website www.jaypeebrothers.com, for detailed information on ayurveda books, visit our website www.jaypeebrothers.com

आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान

भारतीय चिकित्सा पद्धति राष्ट्रीय आयोग के संशोधित पाठ्यक्रमानुसार

आयुर्वेदाचार्य (बी.ए.एम.एस.) नवीन पाठ्यक्रमानुसार

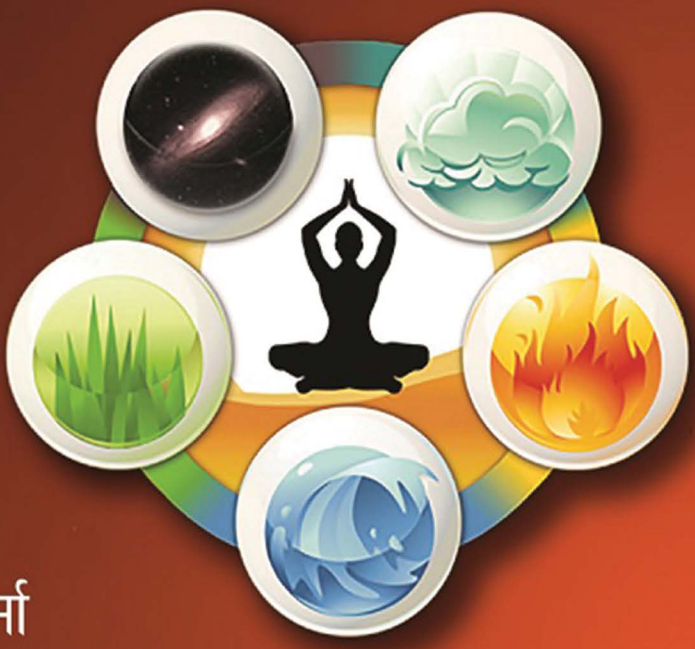

लेखक

आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा

JAYPEE

विषय सूची

प्रश्न पत्र 1

1. आयुर्वेद निरुपण **1–34**

1. आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति एवं व्युत्पत्ति 3
2. आयुर्वेद की परिभाषा 3
3. आयु के लक्षण एवं व्युत्पत्ति 3
4. सिद्धान्त के लक्षण एवं प्रकार (वर्गीकरण) 6
5. आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय एवं महत्व 7–34
6. आयुर्वेद (चिकित्सा) का अधिष्ठान 14

2. आयुर्वेद दर्शन निरुपण एवं पदार्थ वर्णन **35–73**

1. आयुर्वेदीय मूलभूत सिद्धान्तों की दार्शनिक पृष्ठभूमि 35
2. दर्शन शब्द का अर्थ एवं निरुक्ति 35
3. दर्शन की व्यापकता 36
4. दर्शन का उद्भव 37
5. दर्शनों की संख्या एवं श्रेणी विभाजन 41
6. वेदान्त दर्शन 42
7. षड़ दर्शन परिचय 44
8. सांख्य दर्शन 44
9. योग दर्शन 45
10. मीमांसा दर्शन 46
11. वैशेषिक दर्शन 48
12. न्याय दर्शन 49
13. आयुर्वेद में दूसरे दर्शनों के अध्ययन की प्रासंगिकता 50
14. विभिन्न दर्शनों का आयुर्वेद पर प्रभाव एवं समानता के साक्ष्य 51
15. समकालीन साहित्य में दर्शनों की संकल्पना 59
16. पदार्थ प्रकरण 59
17. पद परिभाषा, पद एवं पदार्थ विवेचन 62
18. पदार्थ निरुक्ति, परिभाषा, लक्षण एवं स्वरूप 63–64
19. पदार्थ वर्गीकरण, भाव पदार्थ, अभाव पदार्थ 66
20. चरकानुसार कारण पदार्थ 72
21. आयुर्वेद स्वतन्त्र मौलिक दर्शन विचारधारा 72–73

3. द्रव्य विज्ञानीयम् **75–200**

1. द्रव्य के लक्षण, निरुक्ति 75
2. द्रव्य वर्गीकरण परिभाषा 79

3. कारण द्रव्य संख्या एवं वर्गीकरण पद्धति 80
4. महाभूत प्रकरण प्रत्येक महाभूत के लक्षण एवं परिचय वर्णन 90–119
5. सृष्टि उत्पत्ति की विभिन्न विचारधारा (तैतिरीयोपनिषद्, चरक, सुश्रुत) 120–144
6. **काल निरूपण** व्युत्पत्ति, लक्षण विभाग एवं महत्व 144–155
7. **दिक् (दिशा) निरूपण**, लक्षण, व्युत्पत्ति, भेद एवं महत्व 156–160
8. **आत्म-तत्त्व-निरूपण** लक्षण वर्गीकरण, आश्रयत्व, गुण, लिंग (चरकानुसार) आत्माज्ञानस्य प्रवृति 161–178
9. **पुरुष वर्णन आतिवाहिक**, कर्म पुरुष, राशि पुरुष, सूक्ष्म शरीर, चिकित्सा पुरुष, षड्धात्वात्मक पुरुष 179–183
10. **मनो निरूपण** मन के लक्षण, पर्याय, गुण, उद्देश्य, कर्म तथा उभयात्मकता पञ्चमहाभूत एवं औषध का मन पर प्रभाव मानस विकार 184–196
11. **पंचमहाभूत** एवं त्रिगुण की मानस एवं देह प्रकृति निर्माण में कारणता 197
12. **तमो (अन्धकार) निरूपण** 198
13. प्रत्येक कारण द्रव्य का प्रायोगिक महत्व (व्यावहारिक अध्ययन) 200
14. कारण द्रव्यों का समकालीन विज्ञान में सौदाहरण वर्णन 200

4. गुण विज्ञानीयम् **203–237**
1. गुण परिभाषा, लक्षण, निरूक्ति, व्युत्पत्ति, वर्गीकरण, दर्शनानुसार गुण संख्या चरकोक्त 41 गुण, सार्था, गुर्वादि परादि आध्यात्मिक के लक्षण एवं वर्गीकरण 203–237
2. चरकोक्त 41 गुणों का न्यायोक्त 24 गुणों में समन्वय 217
3. गुणों का प्राधान्य 235
4. प्रत्येक गुण का आयुर्वेद में प्रायोगिक चिकित्सकीय उपयोग 236
5. गुणों का समकालीन विज्ञान में उदाहरण सहित सैधान्तिक अवधारणा 237
6. गुणों का आयुर्वेद में चिकित्सकीय प्रयोग 236

5. कर्म विज्ञानीयम् **239–249**
1. कर्म की परिभाषा, लक्षण 239
2. कर्म भेद 241
3. कर्म की निरुक्ति 241
4. कर्म का वर्गीकरण 244
5. कर्म का आयुर्वेद में प्रायोगिक उपयोग 247
6. समकालीन विज्ञान में कर्म के सिद्धान्तों का सोदाहरण वर्णन 248

6. सामान्य विज्ञानीयम् **251–260**
1. आयुर्वेद एवं दर्शनानुसार सामान्य निरूपण 251
2. परिभाषा लक्षण 251
3. सामान्य वर्गीकरण 253
4. सामान्य का प्रायोगिक व्यावहारिक उपयोग 254
5. ''सामान्य का आयुर्वेदीय पक्ष''-(गुण कर्मानुसार प्रयोग) 257
6. समकालीन विज्ञान में सामान्य का प्रायोगिक उपयोग 260

7. विशेष विज्ञानीयम् **261-265**

1. परिभाषा लक्षण, लक्षण 261
2. विशेष का वर्गीकरण 263
3. विशेष सिद्धि 264
4. आयुर्वेदीय दृष्टि से विशेष का प्रायोगिक उपयोग (द्रव्य, गुण, कर्मानुसार) 266
5. आयुर्वेद में सामान्य एवं विशेष प्रायोगिक विवेक एवं उभयप्रवृति-(प्रवृत्तिरुभयस्य तु) 267
6. सामान्य विशेष का चिकित्सकीय महत्व 268
7. समकालीन साहित्य में सौदाहरण वर्णन 268

8. समवाय विज्ञानीयम् **269-274**

1. दर्शन एवं आयुर्वेदानुसार समवाय लक्षण, परिभाषा 269
2. अयुत सिद्ध सम्बन्ध 271
3. समवाय संयोग में अन्तर 273
4. समवाय का प्रायोगिक चिकित्सकीय प्रयोग 273
3. समकालीन विज्ञान में समवाय की प्रायोगिक अवधारणा 274

9. अभाव विज्ञानीयम् **275-282**

1. दर्शन एवं आयुर्वेदानुसार अभाव स्वरूप लक्षण एवं परिचय 275
2. परिभाषा एवं वर्गीकरण 277
2. अन्योन्याभाव और अनन्योन्याभाव 278
3. अभाव का प्रायोगिक उपयोग 281
4. समकालीन विज्ञान में अभाव की अवधारणा का सोदाहरण वर्णन 282

प्रश्न पत्र 2

10. प्रमाण (परीक्षा) विज्ञानीयम् **285-313**

1. परीक्षा परिभाषा निरुक्ति महत्व, आवश्यकता एवं उपयोग 285
2. प्रमा एवं प्रमाण निरूपणम् 287
3. प्रमा विवेक प्रमा, अप्रमा, प्रमेय प्रमाता एवं प्रमाण की परिभाषा 287
4. प्रमेय विशेष विचार 287
5. प्रमाण का अभिप्राय एवं महत्व 293
6. प्रमाण परिभाषा निरुक्ति लक्षण 294
7. प्रमाण संख्या विभिन्न दर्शनानुसार 296
8. आयुर्वेद दृष्टि से परीक्षा का महत्व 300
9. आयुर्वेद में प्रमाण वर्णन 300
10. परीक्षा के चार प्रकार (चतुर्विध परीक्षा विधि) 301
11. समस्त परीक्षाओं का तीन प्रमाणों में अन्तर्भाव 304
12. स्वतः, परतः प्रमाण 307
13. निदान एवं चिकित्सा में परीक्षा की प्रायोगिक उपयोग विधि 313

11. आप्तोपदेश प्रमाण निरूपण **315-338**
1. आप्त स्वरूप लक्षण 315-316
2. आप्तोपदेश लक्षण परिभाषा 317
3. आप्तोपदेश की आयुर्वेद में प्रधानता 318
4. आप्तोपदेश द्वारा रोग परीक्षा 319
5. **शब्द प्रमाण निरूपण** शब्द लक्षण एवं प्रकार 320-323
6. वाक्यार्थ ज्ञान 324
7. वाक्य लक्षण 325
8. वाक्यार्थ ज्ञान के हेतु 326
9. आकांक्षा, योग्यता, तात्पर्यादि वृत्ति 327
10. शब्द एवं वाक्यार्थबोधक वृत्तियां, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना 328
11. शक्तिग्रहयोग 330
12. आगम एवं शास्त्र प्रमाण 331
13. तुलायन्त्रादि प्रमाण 333
14. ऐतिह्य (इतिहास) प्रमाण 335
15. निघण्टु 336

12. प्रत्यक्ष परीक्षा (प्रमाण) निरूपण **339-379**
1. प्रत्यक्ष परक परिचयात्मक विचार 339
2. परिभाषा, लक्षण, व्युत्पत्ति 340
3. आयुर्वेदीय प्रत्यक्ष लक्षण विवेक प्रत्यक्ष प्रकार, निर्विकल्पक, सविकल्पक, लौकिक अलोकिक एवं इनके आगे भेद 342-350
4. ज्ञानोत्पत्ति प्रकार 351
5. छः प्रकार के सन्निकर्ष, इन्द्रिय प्राप्यकारिता 352
6. इन्द्रिय विवरण, लक्षण वर्गीकरण, संख्या, इन्द्रियों का पांच भौतिकत्व एवं तुल्ययोनित्व 356-367
7. त्रयोदश करण वर्णन, अन्तकरण की प्रधानता 367-368
8. मानस प्रत्यक्ष 370
9. प्रत्यक्ष अनुपलब्धि कारण 376
10. वेदनाओं का अधिष्ठान, कारण और निवृत्ति 372
11. प्रत्यक्ष ज्ञान के विभिन्न यन्त्रादि आवश्यक साधन 374
12. शारीर, निदान, चिकित्सा एवं अनुसंधान में प्रत्यक्ष का प्रयोगिक उपयोग 377

13. अनुमान परीक्षा प्रमाण निरूपणम् **381-410**
1. अनुमान परीक्षा (प्रमाण) लक्षण, परिभाषा 381-382
2. अनुमिति करण पर विचार (परिचय) अनुमान परिभाषा, निरुक्ति, लक्षण प्रकार (भेद, चरक एवं न्याय दर्शन के अनुसार) 383-386
3. पञ्चावयव का वर्णन 386
4. अनुमान पदार्थ लिङ्ग परामर्श आदि 389
5. परामर्श 391

6. लिंग परामर्श 392
7. व्याप्ति विवेक 392
8. व्याप्ति लक्षण, प्रकार 393
9. पक्ष विवेक 396
10. हेतु का स्वरूप एवं भेद (हेतु, सदहेतु, अहेतु) 398–399
11. हेत्वाभास 400
12. तर्क विवेचन 403
13. दृष्टांत 405
14. शारीर, निदान, चिकित्सा एवं अनुसंधान में अनुमान का प्रायोगिक उपयोग 407

14. युक्ति प्रमाण (परीक्षा) निरूपण 411–416
1. युक्ति (परीक्षा) प्रमाण अर्थ, परिभाषा लक्षण एवं विवरण 411
2. युक्ति प्रमाणत्वेन आयुर्वेद में महत्व एवं वैशिष्ट्य 413
3. निदान चिकित्सा एवं अनुसंधान में प्रायोगिक अध्ययन 414
4. युक्ति प्रमाणत्व में शंका एवं प्रमाणत्व मान्यता 415

15. उपमान प्रमाण (परीक्षा) निरूपण 417–422
1. परिभाषा, लक्षण 417
2. उपमान के भेद 419
3. शारीर, निदान, अनुसंधान एवं चिकित्सा में प्रायोगिक अध्ययन 420
4. अन्य प्रमाणों का निरूपण 421–422

16. कार्यकारणभाव सिद्धान्त एवं विविध वाद प्रकरण 423–453
1. कार्य कारण विवेक 423
2. कार्य एवं कारण के लक्षण, कारण प्रकार 424–426
3. आयुर्वेद में कार्य कारण विचार 429
4. विविधवाद का वर्णन 434
5. सतकार्यवाद 437
6. असत्कार्यवाद 443
8. परमाणुवाद 438
9. क्षणभंगुरवाद 444
10. अनेकान्तवाद 445
11. स्वभावोपरमवाद 447
12. स्वभाववाद 447
13. पीलूपाक, पिठर पाक आयुर्वेद में इनका उपयोग एवं महत्व 448
14. चवालीसवाद मार्ग 450
15. सृष्टि का विकासवाद 450
16. अवयव अवयवी विचार 451
17. आरम्भवाद 452
18. परिणामवाद 453

अध्याय 4

गुण विज्ञानीयम्

षट् पदार्थों में गुणों का विशेष महत्व देखा जाता है। दार्शनिक दृष्टि से गुणों का दूसरा स्थान बताया गया है। किन्तु आयुर्वेद दृष्टि से आचार्यों ने सामान्य विशेष के पश्चात् गुणों का तीसरे स्थान पर वर्णन किया है। द्रव्य की सामान्य और विशेष परीक्षा में गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है। व्यावहारिक दृष्टि से भी वस्तु का मूल्यांकन गुणों के आधार पर किया जाता है। द्रव्यों में पाई जाने वाली महाभूतों की विद्यमानता के कारण शरीर पर जो क्रिया होती है उस में गुण ही कारण है। दोषों की रचना में पंचमहाभूत कारण होते हुए भी गुणों के द्वारा ही उनके स्वभाव का वर्णन किया गया है। स्वस्थ एवं आतुर व्यक्ति के लिए जिन आहार एवं औषध द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है उनका निरूपण भी गुणों वाले द्रव्यों के प्रयोग द्वारा उनमें समानता लाई जा सकती है। वैशेषिक दर्शन में 24 गुणों का वर्णन किया है क्योंकि गुणों के विषय में जानने योग्य बात यह है कि वैशेषिक दर्शन में मान्य गुणों के समान आयुर्वेद के सभी गुण स्पर्शेन्द्रिय से ज्ञात होने वाले गुण ही नहीं किन्तु बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग करने पर शरीर पर द्रव्यों की जो प्रक्रिया होती है, विशेष रूप से उसको प्रकट करने वाले गुण हैं जैसे शुण्ठी आदि द्रव्यों को उष्ण इसलिए नहीं कहते क्योंकि वे स्पर्श में उष्ण नही हैं किन्तु शरीर के सम्पर्क में आने पर ताप, दाह आदि वर्द्धन क्रियाएं एवं शरीर के विभिन्न अवयवों पर होने वाले उष्ण प्रभाव के कारण उष्ण कहे जाते हैं। अतः दार्शनिक सम्मत गुणों को भौतिक गुण (Physical properties) कहा जा सकता है। किन्तु आयुर्वेद अभिमत समस्त गुणों को भौतिकता का स्वरूप लिए रासायनिक गुण (Chemical properties) कहा जा सकता है। गुणों में यह स्वरूप भेद होने के कारण ही आयुर्वेद में वर्णित गुण-संख्या, नाम एवं रूप लक्षण आदि दृष्टि से वैशेषिक दर्शन के गुणों से भिन्न हैं।

यद्यपि वेशैषिक के 24 गुणों में ही आयुर्वेदीय 41 गुणों का समावेश हो जाता है। केवल उपयोगिता की दृष्टि से आयुर्वेद में चिकित्सा सुविधा हेतु विस्तार से वर्णन किया गया है।

गुण परिभाषा

द्रव्यों में पाये जाने वाले गुरु-लघु-शीत-उष्णादि भौतिक धर्मों को गुण कहते हैं।

गुण निरूक्ति एवं व्युत्पत्ति- गुण आमन्त्रणे धातु से गुण शब्द बना है।

गुण्यते आमन्त्र्यते अनेन इति गुणः। जो द्रव्य में रहकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करें वह गुण है।

लक्षण-

१) **समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणं।** (च०सू० 1/51)

JAYPEE BROTHERS

जो द्रव्य में आश्रित व समवाय सम्बन्ध से रहे तथा द्रव्य व कर्म से पृथक् हो उसे गुण कहते हैं। (द्रव्य आधार है एवं गुण आधेय है इसलिए द्रव्य से पृथक् है एवं निश्चेष्ट होने से कर्मरहित अथवा कर्म से पृथक् है।)

२) **अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणाः।** (कारि०)
द्रव्य में आश्रित होते हुए गुणरहित और क्रिया रहित हो उसे गुण कहते हैं।

३) **विश्वलक्षणा गुणाः** (र०वै०)
अनेक लक्षणों वाले पदार्थ को गुण कहते हैं।

४) **गुणत्वजातिमान्।** (दीपिका)
गुण जाति वाले पदार्थ का नाम गुण है।

५) **गौणत्वाद् गुणसंज्ञकाः।**
गौण होने से भी इसे गुण कहते हैं।

६) **द्रव्यावृत्ति नित्यावृत्ति-जातिमान्।**
जो न द्रव्य है और अनित्य है किन्तु जाति वाला है उसे गुण कहते हैं।

७) **द्रव्याश्रयी न गुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्।** (वै०द०)
जो द्रव्य में आश्रित होते हुए गुण रहित हो किन्तु संयोग एवं विभाग में कारण न हो उसे गुण कहते हैं।

८) **सामान्यवत्त्वे सति समवायिकारणभिन्नत्वे सति कर्मभिन्नत्वम्।** (त०भा०टी)
जो पदार्थ किसी कार्य का समवायी कारण नहीं होता एवं कर्म से भिन्न होता है तथा सामान्य का आश्रय होता है उसे गुण कहते हैं।

९) **गुणत्वजातिमत्त्वं गुणसामान्यलक्षणम्।** (प्रशस्तपाद)
गुणत्व जाति वाले पदार्थ को गुण कहते हैं।

१०) **निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः।** (सु०सू०)
गुण गुणरहित होते हैं।

विशेष ज्ञातत्व

गुण के लिए किए गए सभी लक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि वास्तविक लक्षण का उद्देश्य गुण को द्रव्य एवं कर्म से पृथक् करने का है। द्रव्य आश्रय है जिसमें गुण एवं कर्म दोनों ही आश्रित हैं। अतः कहीं नित्य शब्द से कारण का निराकरण किया है कहीं भिन्नता से कर्म को पृथक् बताया है। कणाद ने अपने लक्षण में लिखा है **''द्रव्याश्रयी न गुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्''** संयोग में अकारणता द्वारा कर्म से अतिव्याप्ति का निवारण किया है। बोडाज ने तर्कसंग्रह में लिखा है कि गुण स्थायी है एंव कर्म अस्थायी। जब तक प्रक्रिया चलती है तब तक कर्म कहलाता है, जब प्रक्रिया स्थिर हो जाती है तो वह गुण कहलाता है।

गुणत्व की सिद्धि

लक्षणों में गुण पद का **गुणत्वजातिमत्वं** अर्थ किया गया है अतः गुणत्व को जाति कहा गया है। गुण की इस गुणत्व जाति को सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण हैं। अनुमान प्रमाण द्वारा गुणत्व जाति की सिद्धि की गई है। द्रव्य और कर्म से भिन्न जातिमान् पदार्थों में जो कारणता है वह किसी धर्म से युक्त है क्योंकि कोई भी कारणता निरवच्छिन्न नहीं होती। रूपत्त्व आदि गुण अथवा सत्ता आदि अवच्छेदक नहीं हो सकती क्योंकि रूपत्व आदि धर्म (गुण) न्यूनदेशवृत्ति वाले हैं (अर्थात् कम वस्तुओं में पाए जने वाले हैं) तथा

JAYPEE BROTHERS

गुण अधिक देशवृत्ति धर्म वाला है अतः 24 गुणों में रहने वाला कोई अनुगम धर्म होना चाहिए और अनुगम रूप मान्य धर्म ही गुणत्व है। किन्तु अणु परिमाण कहीं भी कारण नहीं होता और गुणत्व जाति की सिद्धि नहीं हो सकती अतः **गुणपदशक्यताच्छेदकत्वेन** से गुणत्व जाति की सिद्धि मानी जाती है।

गुणोत्पत्ति प्रक्रिया

गुणों के सामान्यतया पाकज और अपाकज भी दो भेद किए गए हैं। पृथ्वी में रहने वाले विशेष गुण परम्परापूर्वक पाक द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं (1) पाकप्रयोज्य गुण (2) पाकजन्य गुण।

१) **पाकप्रयोज्य गुण**- जो पाक्य द्वारा परम्परापूर्वक उत्पन्न होते हैं, उन्हें पाक प्रयोज्य गुण कहा जाता है, अर्थात् जहां पर पाक्य कारण गुणारम्भ द्वारा गुण उत्पन्न होते हैं वे पाकप्रयोज्य कहलाते हैं।

२) **पाकजन्य गुण**- जो अग्नि के साक्षात् संयोग से उत्पन्न होते हैं उन्हें पाक जन्य गुण कहा जाता है।

पाकज रूप उत्पत्ति के विषय में नैयायिक और वैशेषिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। नैयायिकों का कहना है कि श्याम वर्ण के घट को अग्नि में डालने से ताप के प्रभाव से उसके कृष्ण रूप का नाश हो जाता है और रक्त स्वरूप की उत्पत्ति हो जाती है अर्थात् घट तो उसी अवस्था में विद्यमान रहता है किन्तु उसके पूर्व गुण का नाश और नवीन रूप गुण की उत्पत्ति हो जाती है।

दूसरा मत वैशेषिकों का है जिनके अनुसार अग्नि ताप से घट परमाणु रक्त वर्ण के हो जाते हैं। उन रक्त परमाणुओं से पुनः रक्त घट की उत्पत्ति होती है। यह परमाणुओं के परिवर्तन माना गया है घट में नहीं है। ये दोनों पीलुपाकी और पिठरपाकी कहे जाते हैं।

गुण का निर्दुष्ट लक्षण

अन्य पदार्थों की तरह गुणों का निर्दृष्ट लक्षण जानने हेतु बताए गए लक्षणों का ज्ञान करना आवश्यक है।

तर्कभाषा के गुण लक्षण से सिद्ध होता है कि रूप, रस आदि गुण किसी कार्य के समवायी कारण नहीं होते, कर्म से भिन्न होते हैं साथ ही सत्ता, गुणत्व आदि सामान्य जाति के आश्रय होते हैं वे गुण कहे जाते हैं। गुण के इस लक्षण में से **''सामान्यवत्त्व''** को निकाल दिया जाए तो शेष अंक के सामान्य आदि पदार्थों में रहने से गुण लक्षण की अतिव्याप्ति हो जाएगी। इसी प्रकार **'समवायि कारणभिन्नत्व'** को निकाल देने पर शेष भाग के द्रव्य में रहने से द्रव्य में अतिव्याप्ति हो जायेगी। इसी प्रकार **कर्मभिन्नत्व** को लक्षण से निकाल देने पर शेष भाग के कर्म में रहने से कर्म में अतिव्याप्ति हो जाएगी अतः उपर्युक्त लक्षण में तीनों ही अंश आवश्यक है।

चरक, कारिकावली व सुश्रुत द्वारा किये गये लक्षणों में द्रव्याश्रित कर्म से भिन्न गुण रहित आदि तथ्य दिये हैं इनमें से भी द्रव्याश्रयी, निर्गुण, निष्क्रिय, निश्चेष्ट आदि को एक-एक कर निकाल देने से भी अव्याप्ति, अतिव्याप्ति दोष प्रकट होने की सम्भावना रहती है अतः द्रव्य के निर्दुष्ट लक्षण के लिए **गुणत्वजातिमत्त्वं** गुण सामान्य ही लक्षण करना उचित है अथवा ऊपर बताए गए लक्षणों में द्रव्य और कर्म में अतिव्याप्ति दोष दूर करने वाले निश्चेष्ट निष्क्रिय आदि अंशों को संयुक्त करना पड़ेगा। तभी द्रव्य का निर्दुष्ट स्वरूप दिखाई देगा।

JAYPEE BROTHERS

गुणों का वर्गीकरण

द्रव्य के समान गुण भी असंख्य है किन्तु साम्यता के भाव से अध्ययन सुविधा हेतु आयुर्वेद एवम् दर्शनग्रन्थों में इनका वर्गीकरण करते हुए विभाजन किया गया है। सांख्य द्वारा मान्य 24 गुण तथा आयुर्वेद के 41 गुणों को निम्न रूप से विभाजित किया गया है।

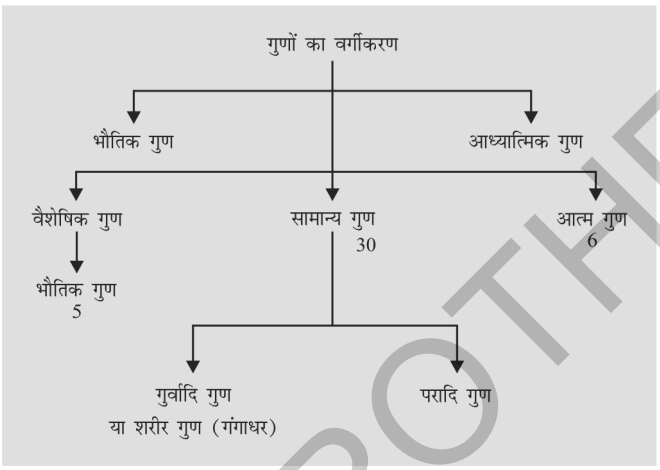

चक्रपाणि ने गुणो को तीन वर्गो में विभाजित किया है। (1) वैशेषिक गुण, (2) सामान्य गुण, (3) आत्म गुण। सुविध की दृष्टि से सामान्य गुणों को दो भागों में विभक्त किया गया है गुर्वादि गुण तथा परादि गुण। गुर्वादि गुणों का शारीरिक धातुओं एवं द्रव्यों के साथ विशेष सम्बन्ध होने के कारण इन्हें कविराज गंगाधर ने शरीर गुण भी कहा है। गुर्वादि व परादि गुणों की महाभूतों में समानता होने के कारण सामान्य गुण एवं शब्द, स्पर्श रूप आदि विषयरूप महाभूतों के विशिष्ट गुण होने से वैशेषिक गुण कहे गये हैं।

दार्शनिक पक्ष से गुणों का विभाजन मूर्तामूर्त, इन्द्रियग्राह्यत्व और एक तथा एकाश्रित वृत्ति द्वारा जिन रूपों का विभाजन किया गया है, वह इस प्रकार है।

कारिकावली में इन गुणों का विभाजन करते हुए (1) मूर्तगुण, (2) अमूर्तगुण, (3) मूर्तामूर्त गुण, (4) अनेकाश्रित गुण एवं (5) एक वृत्ति रूप में विभाजन करते हुए विशेष गुण एवं सामान्य गुण से उल्लेख किया है।

रूपं रसः स्पर्शगन्धौ परत्वमपरत्वकम्।

द्रवत्वस्नेहवेगाश्च एता मूर्तगुणा अमी॥

मूर्तगुण

अर्थात् 24 गुणों में रूप, रस, स्पर्श, गन्ध, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये नौ गुण मूर्तगुण कहे जाते हैं।

अमूर्तगुण

धर्माधर्मभावना च शब्दो बुद्ध्यादयोऽपि च।

धर्म, अधर्म, भावना, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न को अमूर्त गुण कहा गया है अर्थात् जो गुण मूर्त में न रहने वाले हों उन्हें अमूर्त गुण कहा गया है।

JAYPEE BROTHERS

उभयवृत्ति गुण

संख्यादयो विभागान्ता उभयेषां गुणा मताः।

अर्थात् संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ये मूर्त और अमूर्त दोनों में रहने वाले उभयवृत्ति या मूर्तामूर्त गुण कहे जाते हैं।

अनेकाश्रित गुण

संयोगश्च विभागश्च संख्या द्वित्वादिकास्तथा।
द्विपृथक्त्वादयस्तद्वदेतेऽनेकाश्रिता गुणाः॥

अर्थात् संयोग, विभाग, द्वित्व, त्रित्व, आदि संख्याओं में, इसी तरह द्विपृथक्त्व (दो की पृथक्ता) त्रिपृथक्त्व (तीन की पृथक्ता) में अनेकाश्रितत्व साधर्म्य होने से अनेकाश्रित गुण कहा जाता है।

एकवृत्ति गुण

''अतः शेषगुणाः सर्वे मता एकैकवृत्तयः।''

अर्थात् शेष गुण-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, एकत्व, परिमाण, एक पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, अदृष्ट और शब्द को एकवृत्ति कहा गया है।

विशेष गुण

बुद्ध्यादिषटकं स्पर्शान्ता स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः।
अदृष्टभावनाशब्दा अमी वैशेषिका गुणाः॥

अर्थात् बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, रूप, गन्ध और स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिकद्रवत्व, अदृष्ट, भावना ये शब्द विशेष गुण कहे जाते हैं।

सामान्य गुण

संख्यादिपरत्वान्तो द्रवोऽसांसिद्धिकस्तथा।
गुरुत्ववेगौ सामान्यगुणा एते प्रकीर्तिताः॥

अर्थात्-संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, अपरत्व, नैमित्तिक, द्रवत्व, गुरुत्व और वेग इनको सामान्य गुण कहा जाता है।

गुणों का साधर्म्य व वैधर्म्य

द्रव्यों की तरह गुणों में भी भिन्नता होते हुए जिन अर्थों में समानता की प्रतीति हो वह उनमें परस्पर साधर्म्य कहलाता है तथा विभिन्न गुणों में अर्थों की जो भिन्नता होती है वही वैधर्म्य है।

उपरोक्त गुणों के-इनके स्वरूप एवं इन्द्रिय से ग्राह्यत्व के आधार पर ही साधर्म्य को देखते हुए इस प्रकार के विभाग किये गए हैं जैसा कि प्रत्येक विभाग के साथ निर्देश किया गया है।

1. रूप, रस, गंध, स्पर्श व शब्द इनमें एक-एक इन्द्रिय से ग्राह्यत्व होना साधर्म्य है।
2. गुरुत्व, अदृष्ट, भावना इनमें अतीन्द्रियत्व रूप साधर्म्य है।

JAYPEE BROTHERS

3. आकाश, आत्मा में बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द विशेष गुण हैं उनमें अकारण-गुणोत्पन्नत्व साधर्म्य है।
4. संयोग, विभाग और वेग इनमें कर्मजन्य साधर्म्य है।
5. रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिमाण, एकत्व, एकपृथक्त्व, स्नेह, शब्द इनमें असमवायित्व साधर्म्य है।
6. उष्ण, स्पर्श, गुरुत्व, वेग, द्रवत्व, संयोग, विभाग में दो प्रकार से अर्थात् असमवायिकारणत्व, निमित्तकारणत्व। इस प्रकार उभयकारणत्व साधर्म्य है।
7. इन गुणों में जो धर्म एक दूसरे से पृथक् करने वाला है वह वैधर्म्य कहलाता है जैसे संख्या 1 का संख्या 2 के साथ वैधर्म्य है। इसी प्रकार वैधर्म्य अन्य उपरोक्त संख्याओं में भी साधर्म्य देखा जा सकता है।

गुर्वादि 20 गुण, परत्व, अपरत्व, रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श, गुणों को मूर्त कहा जाता है। ये सभी नौ कारण द्रव्यों में से स्थूल द्रव्यों में ही पाये जाते हैं जैसे पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु में। इस प्रकार बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म संस्कार और शब्द अमूर्त गुण कहे जाते हैं। अतः स्थूल स्वरूप रहित द्रव्यों में पाये जाते हैं जैसे-आत्मा और आकाश में। अतः इस प्रकार का परस्पर ग्रहण न होना वैधर्म्य कहलाता है। जो गुण जिन द्रव्यों में पाया जाये और जिन द्रव्यों में नहीं पाया जाये वही गुण परस्पर वैधर्म्य होता है।

द्वीन्द्रियग्राह्य गुण

'संख्यादि परत्वान्तो द्रवत्वं स्नेह एव च' (92 कारि०)

संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह एवं वेग इनमें द्वीन्द्रियगाह्यत्व होने से द्वीन्द्रिय ग्राह्य गुण कहे जाते हैं। इन गुणों का नेत्र एवं त्वचा दो इन्द्रियों से ग्रहण होता है।

बाह्यएकेन्द्रिय ग्राह्य गुण

अथ स्पर्शान्तशब्दका बाह्यैकेन्द्रियग्राह्य॥ (93 का०)

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्द इनका एक-एक बाह्येन्द्रिय से ज्ञान होने के कारण इन्हें एकेन्द्रियग्राह्य गुण कहा जाता है।

अतीन्द्रिय गुण

'गुरुत्वादृष्टभावनां' (93 ख०कारि)

गुरुत्व, अदृष्ट और भावना इनको अतीन्द्रिय गुण कहा जाता है।

अकारणगुणोत्पन्न गुण

'अतीन्द्रियां', विभूनां तु ये स्युर्वैशेषिका गुणाः।
अकारणगुणोत्पन्ना एते तु परिकीर्तिताः॥ (94 कारि)

आकाश एवं आत्मा में जो बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द विशेष गुण हैं उन्हें अकारणगुणोत्पन्न गुण कहा जाता है। अर्थात् अकारणगुणोत्पन्न का अर्थ है कि कारण के गुण

JAYPEE BROTHERS

से कार्य में जो गुण उत्पन्न होते हैं वे रूप आदि गुण कारणगुणपूर्वक होते हैं किन्तु बुद्धि आदि उपरोक्त विभुओं में बताये गए गुण कारण के गुण कार्य में उत्पन्न नहीं होते क्योंकि आत्मा और आकाश का कोई कारण नहीं है। फिर आत्मा में बुद्धि आदि गुणों की उत्पत्ति कारण गुण से नहीं होती इसलिए उन्हें अकारण गुणोत्पन्न गुण बताया गया है।

कारणगुणोत्पन्न गुण

'अपाकजास्तु स्पर्शान्ता द्रवत्वं च तथाविधम्।
स्नेहवेगुरुत्वैकपृथकत्वपरिमाणकम्॥'
'स्थितिस्थापक इत्येते स्युः कारणगुणोद्भवाः।' (95 कारि०)

अपाकज रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अपाकज द्रवत्व, एकत्व, स्नेह, वेग, गुरुत्व, एक पृथकत्व, परिमाण और स्थितिस्थापक ये गुण कारक के गुण से जन्य हैं अतः इन्हें कारण गुणोत्पन्न गुण बताया गया है।

कर्मजगुण

'संयोगश्च विभागश्च वेगश्चैते तु कर्मजाः'।
संयोग, विभाग तथा वेग इन्हें कर्मज गुण कहते हैं।

असमवायी गुण

'स्पर्शान्तपरिमाणैकपृथक्त्वस्नेहशब्दकाः।'
रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिमाण, एकत्व, एकपृथक्त्व, स्नेह, शब्द इन्हें असमवायी गुण कहते हैं।

कुछ विद्वानों ने 24 गुणों का अवान्तर भेदों के रूप में विभिन्न दृष्टिकोण से विचार किया है। जिनमें सामान्य गुण, विशेष गुण, नित्य गुण, अनित्य गुण, प्रत्यक्ष गुण और अप्रत्यक्ष गुण आदि प्रमुख हैं। इनमें सामान्य और विशेष गुणों का ऊपर वर्गीकरण में विवरण दिया है जो कारिकावली के आधार पर है।

नित्यानित्य गुण

जल, तेज, वायु और पृथ्वी के परमाणु के विशष गुण होते हैं। परमाणु में रहने वाले स्थितिस्थापक और संस्कार गुण भी नित्य होते हैं। दिशा, काल आदि विभु द्रव्यों तथा परमाणुओं में रहने वाले एकत्व परमाणु और पृथकत्व भी नित्य गुण हैं। परमात्मा की ज्ञान, इच्छा और वृत्ति में तीन गुण भी नित्य होते हैं अन्य सभी अनित्य कहे गए हैं।

प्रत्यक्ष गुण

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले गुणों को प्रत्यक्ष गुण कहा जाता है। अतः रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और स्नेह या इन्द्रियों से प्रत्यक्ष ज्ञान होने के कारण ही इन्हें प्रत्यक्ष गुण कहा जाता है।

अप्रत्यक्ष गुण

जिन गुणों का इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता उन्हें अप्रत्यक्ष गुण कहा जाता है। भावना तथा स्थितिस्थापकता का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है उनमें प्रत्यक्ष नहीं होता। परमाणु और द्विअणु ये पदार्थ स्वयं ही अप्रत्यक्ष हैं अतः प्रत्यक्ष पाये जाने वाले गुण भी अप्रत्यक्ष हैं। इसी प्रकार आत्मा और मन में रहने वाले गुण भी अप्रत्यक्ष होते हैं।

JAYPEE BROTHERS

त्रिविधि महागुण

प्रकृति का प्रारम्भ गुणपरम्परा से ही होता है। पुरुष त्रिगुणातीत है। प्रकृति में त्रिगुण विद्यमान होते हैं, जिन्हें सत्व, रज, तम कहा जाता है। यह त्रिगुणात्मक प्रकृति पुरुष के साथ मिलकर सृष्टि का निर्माण करती है अतः सभी द्रव्यों में त्रिगुण भी अवश्यमेव विद्यमान रहते हैं। समस्त वस्तुओं के उत्पादक होने के कारण इन्हें गुण कहा जाता है तथा सभी वस्तुओं में इनकी सत्ता होने से सत्तावान् कहलाते हैं। सभी गुणों में उत्तमता, उत्कृष्टता होने से ही आयुर्वेदाचार्यों ने इनको महागुण कहा है।

''सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रय प्रोक्ता महागुणाः।'' (वाग्भट्ट)

गर्भावस्था में इन तीनों महागुणों के न्यूनाधिक्य से मनुष्य की सात्त्विक, राजस, तामस आदि प्रकृतियों का निर्माण होता है। इनमें सत्वगुण श्रेष्ठ माना जाता है। इसी गुण के कारण मनुष्य में पवित्रता, भक्ति, स्मृति, धृति आदि गुण आते हैं। राजस, तामस द्वारा मन, पूर्वजन्मकृत फल को लेकर लिंग शरीर के साथ नवीन शरीर में प्रवेश करता है अतः इन दोनों गुणों द्वारा उत्पन्न होने वाले मोहात्मक और अज्ञानस्वरूप धर्मों को दूर करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः जन्मधारण से मोक्ष प्राप्ति तक तथा सन्तान में भी इनकी प्रमुखता देखी जाती है।

वैशेषिक और सामान्य गुणों को भौतिक जगत् से सम्बन्ध रहने के कारण आधिभौतिक तथा आत्मगुण को आत्मिक जगत् से सम्बन्ध होने के कारण आध्यात्मिक भी कह सकते हैं। जैसे-

गुण- 1. आधिभौतिक, 2. आध्यात्मिक। आधिभौतिक- 1. सामान्य, 2. विशिष्ट। सामान्य- 1. गुर्वादि, 2. परादि।

गुणों की संख्या

उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार आयुर्वेद में गुणों की संख्या निम्नलिखित प्रकार से बताई है-**सार्था गुर्वादयो बुद्धिप्रयत्नान्ताः परादयो गुणाः प्रोक्ताः।** (चरक)

आध्यात्मिकगुण-6, परादिगुण-10, गुर्वादिगुण-20, विशिष्ट गुण-5। इस प्रकार गुणों की संख्या 41 मानी गई है। जिनका सामान्य परिचय आगे दिया जा रहा है।

विशिष्ट गुण (सार्था)

''अर्थाः शब्दादयो ज्ञेया गोचरा विषया गुणाः।''

भूतों के विशिष्ट गुणों तथा इन्द्रियों के विषयों को विशिष्ट गुण या शब्दादि गुण कहते हैं। ये संख्या में पांच हैं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। ये क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी इन भूतों के विशिष्ट गुण तथा श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण इन इन्द्रियों के विशिष्ट विषय है।

अतः पंचमहाभूतों के पांच गुण विशिष्ट गुणों के अन्तर्गत माने गए हैं। वैसे तो सभी गुण पंचमहाभूतात्मक संगठन से बने हैं, परन्तु महाभूत के विशेष गुण होने के कारण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध को विशिष्ट गुण कहा गया है।

क) शब्द-''श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः संयोगाद्विभागाच्छब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः।''

अर्थात् संयोग, विभाग तथा शब्द से शब्द की उत्पत्ति होती है। शब्द आकाश का गुण है। कान द्वारा ग्रहण होता है, क्षणिक है, कार्य कारण दोनों का विरोधी है।

JAYPEE BROTHERS

ख) स्पर्श–**''त्वगिन्द्रियमात्रग्राही गुणः स्पर्शः''** अर्थात् केवल त्वगिन्द्रिय (त्वचा) से जिस गुण का ग्रहण होता है उसको स्पर्श कहते हैं। जल में शीत, तेज में उष्ण तथा पृथ्वी और वायु में अनुष्णाशीत स्पर्श होता है।

ग) चक्षु–**''रूपं चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणः''** अर्थात् चक्षु इन्द्रिय से जिस गुण का ग्रहण होता है उसको रूप कहते हैं। रूप नित्य और अनित्य भेद से दो प्रकार का होता है। जल तथा तेज के परमाणुओं से नित्य और पृथ्वी के परमाणुओं से अनित्य है।

घ) रस–**''रसनाग्राहौ गुणो रसः''** अर्थात् रसना (जिह्वा) इन्द्रिय से ग्रहण होने वाले गुण का नाम 'रस' है। जल अन्तरिक्ष से गिरता हुआ पञ्च महाभूतों के गुणों से समन्वित होकर जंगम और स्थावर सभी मूर्त द्रव्यों का पोषण करता है जिसके अन्दर छः रस बनते हैं।

ङ) गन्ध–**''घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः''** अर्थात् जिस गुण का घ्राणेन्द्रिय (नाक) से ग्रहण होता है उसको गन्ध कहते हैं। गन्ध गुण केवल पृथ्वी द्रव्य में रहता है और सुरभि तथा असुरभि भेद से दो प्रकार का होता है।

आध्यात्मिक गुण

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः।
बुद्धिः स्मृतिरहंकारो लिंगानि परमात्मनः॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और बुद्धि इन्हें आत्मगुण या आध्यात्मिक गुण कहते हैं। स्मृति, चेतना, धृति, अहंकार आदि बुद्धि विशेष होने से उनका बुद्धि में ही अन्तर्भाव किया गया है। ये आत्मा के विशेष होने से आध्यात्मिक गुण भी कहे जाते हैं।

बुद्धि

''सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः'' सभी प्रकार के व्यवहारों के हेतु के ज्ञान का नाम बुद्धि है। अनुभूति तथा स्मृति भेद से बुद्धि दो प्रकार की होती है। संस्कार मात्र में जो ज्ञान होता है उसे स्मृति कहा जाता है। स्मृति से भिन्न ज्ञान को अनुभूति कहा जाता है।

सुख

''धर्मजन्यमनुकूलवेदनीयं गुणः सुखम्'' अर्थात् जो धर्म से उत्पन्न होता है तथा परम प्रेम का विषय है उस गुण को सुख कहा जाता है।

दुःख

''अधर्मजन्यं प्रतिकूलवेदनीयं गुणो दुःखम्'' जो अधर्म से उत्पन्न होता है तथा परमद्वेष का विषय है उसे दुःख कहते हैं।

इच्छा

''स्वार्थं परार्थं वाऽप्राप्तप्रार्थनेच्छा'' स्वतः ही दूसरे के लिए अप्राप्त अर्थ की कामना या चाह का नाम इच्छा है। इच्छा के विषय अनुसार अनेक भेद है जैसे मैथुनेच्छा को 'काम' दूसरे को ठगने की इच्छा को 'उपधा' कहा जाता है।

JAYPEE BROTHERS

द्वेष

''प्रज्वलनात्मको द्वेषः'' जिसके उत्पन्न होने से अपने आपको जलने के समान अनुभव हो उसे द्वेष कहा जाता है। यह दु:ख यादगार के कारण आत्मा तथा मन के संयोग होने पर उत्पन्न होता है।

प्रयत्न

''कृतिः प्रयत्नः'' किसी वस्तु के सम्पादन अर्थ की चेष्टा प्रयत्न कहलाता है, यह आत्मा और मन के संयोग होने पर इच्छा और द्वेष से उत्पन्न होता है।

गुर्वादि गुण-(कर्म के असामान्य गुण)

गुरु-मन्द-हिम-स्निग्ध-श्लक्ष्ण-सान्द्र-मृदुस्थिराः।
गुणाः ससूक्ष्म-विशदा विंशतिः सविपर्ययाः॥ (अ०ह्य०सू०)

गुर्वादि गुण-द्रव्य गुण शास्त्र की दृष्टि से गुणों में सर्वोपरि स्थान रखते हैं। प्रत्येक द्रव्य का महत्व भी इन्हीं गुणों के द्वारा देखा जाता है।

(डॉ० प्रियव्रत जी शर्मा द्वारा वर्णित विषय सार रूप साभार लिया जाकर आगे दिया जा रहा है।)

गुरु (Heaviness)-लोकभाषा में इसे भारीपन कहते हैं यह गुण द्रव्यों के स्वाभाविक अध:पतन के कारणभूत होते हैं।

परिभाषा- जो गुरुपाक हो तथा जो शरीर में भारीपन उत्पन्न करे उसे गुरु कहा जाता है। जैसे उड़द की दाल, मूसली आदि।

लघु (Lightness) - लोकभाषा में इसे हल्कापन कहा जाता है। गुरु का ठीक विपरीत लघु होता है।

परिभाषा- जो लघुपाक हो तथा जिससे शरीर में लघुता जो वह लघु कहा जाता है। जैसे मूंग, खील आदि।

शीत (Cold) -लोकभाषा में इसे ठण्डा या ठण्डक कहा जाता है। यह दाह का शमन करता है।

परिभाषा- जिससे शरीर की उष्णता कम हो वह शीत गुण है। जैसे चन्दन आदि।

उष्ण (Heat) - इसे लोकभाषा में गर्मी कहते हैं इससे दाह बढ़ती है।

परिभाषा- जिससे शरीर में उष्णता बढ़े उसे उष्ण कहते हैं। यह शीत के ठीक विपरीत होता है। जैसे चित्रक आदि।

स्निग्ध (Soothingness) - इसे लोकभाषा में चिकनाहट कहते हैं।

परिभाषा- जिसमें चिकनाहट पैदा करने की शक्ति हो उसे स्निग्ध कहा जाता है। जैसे तिल, तेल।

रूक्ष (Dryingness) - इसे लोकभाषा में रूखापन कहते हैं।

परिभाषा- जिससे शरीर में रूक्षता, कठिनता और शुष्कता उत्पन्न हो वह रूक्ष कहा जाता है-जैसे जौ आदि।

JAYPEE BROTHERS

मन्द (Dullness) – इसे लोकभाषा में सुस्ती कहते हैं।

परिभाषा– जो शरीर में जाकर शमन कर्म करे वह मन्द कहलाता है। जैसे गिलोय आदि।

तीक्ष्ण (Sharpness) – इसे लोकभाषा में तेजी कहा जाता है।

परिभाषा– जो शरीर में प्रयुक्त होने पर शोधन कर्म करे वह तीक्ष्ण गुण कहलाता है। जैसे जयपाल आदि।

स्थिर (Immobility) – इसे लोकभाषा में गतिशीलता कहते हैं।

परिभाषा– जो शरीर में जाकर वायु और मलों को प्रेरणा दे वह सर गुण कहलाता है। जैसे अमलतास आदि।

मृदु (Softness) – इसे लोकभाषा में मुलामियत कहा जाता है। स्पर्श में जो कोमल और शिथिल प्रतीत हो उसे मृदु कहते हैं।

परिभाषा– जो शारीरिक अंगों में कोमलता और शिथिलता उत्पन्न करे वह मृदु गुण है। जैसे–एरण्ड तैल आदि।

कठिन (Hardness) – इसे लोकभाषा में कड़ापन कहा जाता है।

परिभाषा– जिसके द्वारा शरीर में कठोरता और दृढ़ता उत्पन्न हो उसे कठिन गुण कहते हैं। जैसे–प्रवाल, मुक्ता आदि।

विशद (Clearness) – इसे लोकभाषा में स्वच्छता कहा जाता है।

परिभाषा– जिसमें क्षालन (पिच्छिलता को नष्ट करने) की शक्ति हो वह विशद कहलाता है। यह अवयवों का विभाजक होता है। जैसे–क्षार आदि।

पिच्छिल (Sliminess) – इसे लोकभाषा में लुआब कहते हैं। यह द्रव्यों को चिपकाने वाला होता है तथा तन्तुल होता है।

परिभाषा– जिसके द्वारा शरीर में लेप कर्म हो उसे पिच्छिल कहते हैं। इससे शरीर में गौरव उत्पन्न होता है। यह अवयवों का संयोजक होता है। जैसे इसबगोल आदि।

श्लक्ष्ण (Smoothness) – इसे लोकभाषा में चिकनापन कहते हैं।

परिभाषा– जिसमें रोपण शक्ति हो उसे श्लक्ष्ण कहा जाता है। जैसे दुग्धपाषाण आदि।

खर (Roughness) – इसे लोकभाषा में रूखापन कहते हैं।

परिभाषा– जिसमें लेखन शक्ति हो वह खर कहलाता है। जैसे–करञ्जफल आदि।

सूक्ष्म (Minuteness)– इसे लोकभाषा में बारीक कहा जाता है।

परिभाषा– जो सूक्ष्मता के कारण शरीर के समस्त अवयवों में प्रविष्ट हो जाये तथा सभी स्रोतों को खुला रखे उसे सूक्ष्म कहते हैं जैसे–शराब आदि।

स्थूल (Bulkiness) – इसे लोकभाषा में मोटापन कहा जाता है।

JAYPEE BROTHERS

परिभाषा- जो गुरुपाक है तथा स्थूलता के कारण स्रोतों का अवरोध करे वह स्थूल कहा जाता है। जैसे-पिष्टी, दही आदि।

सान्द्र (Solidity) - इसे लोकभाषा में गाढ़ापन कहते हैं। जो स्थूल और स्थिर हो उसे सान्द्र कहते हैं।

परिभाषा- जो शरीर में जाकर अवयवों का प्रसाधन करे वह सांद्र कहलाता है। जैसे-मक्खन, मलाई आदि।

द्रव (Fluidity) - इसे लोकभाषा में पतलापन कहते हैं जो सूक्ष्म और सब जगह व्याप्त होने वाला हो वह द्रव कहलाता है।

परिभाषा- जिसमें शरीर को आर्द्र करने, व्याप्त होने तथा विलीन करने की शक्ति हो उसे द्रव कहते हैं। जैसे-जल, दुग्ध आदि।

परादि गुण

परापरत्वे युक्तिश्च संख्या संयोग एव च।
विभागश्च पृथक्त्वं च परिमाणमथापि च॥
संस्कारोऽभ्यास इत्येते गुणाः प्रोक्ताः परादयः। (च०सू०)

अर्थात् परादि गुण 10 होते हैं- परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार और अभ्यास।

१. **परत्व**- का अर्थ है 'प्रधानता'। एक जाति के अनेक द्रव्यों में जो प्रधान और उत्कृष्ट होता है उसे परत्व कहते है।

२. **अपरत्व**- परत्व के विपरीत अपरत्व होता है। इसका अर्थ है अप्रधानता। अपनी जाति में जो अप्रधान और अनुत्कृष्ट होता है उसे अपर कहते हैं।

३. **युक्ति**- दोष आदि का विचार कर औषध की समीचीन (युक्तियुक्त) कल्पना (योजना) को युक्ति कहते हैं। यदि औषध की कल्पना ठीक नहीं हुई तो उसे युक्ति नहीं कहते। जैसे पुत्र के अयोग्य रहने पर पुत्र नहीं कहते।

४. **संख्या**- गणित अर्थात् गणना व्यवहार के हेतु एक, दो, तीन आदि को संख्या कहते है। दोष, विकार तथा द्रव्य के भेद संख्या के द्वारा ही व्यक्त किये जाते हैं। जैसे-तीन दोष, आठ ज्वर, पचास महाकषाय, त्रिफला आदि।

५. **संयोग**- दो या अधिक द्रव्यों का परस्पर मिलना संयोग कहलाता है। यह संयोग वियुक्त पदार्थों का कालविशेष में अल्पकाल के लिए होता है और पुनः विभाग के द्वारा नष्ट हो जाता है। अतः यह अनित्य है।

कारण की दृष्टि से संयोग तीन प्रकार का होता है-द्वन्द्वकर्मज, सर्वकर्मज, एककर्मज।

६. **विभाग**- द्रव्यों के विभाजन का संयोग के नाश को विभाग कहते हैं। किसी संयुक्त द्रव्यसमूह से द्रव्यों को अलग करना विभाग कहलाता है। यह भी अनित्य है क्योंकि संयोग से यह नष्ट हो जाता है। संयोग के समान यह भी तीन प्रकार का होता है। द्वन्द्वकर्मज, सर्वकर्मज, एककर्मज।

JAYPEE BROTHERS

७. **पृथक्त्व**- एक द्रव्य जो दूसरे द्रव्य से भिन्न करने वाला जो गुण है वह पृथक्त्व कहलाता है। इस प्रकार द्रव्यों के परस्पर पार्थक्यबुद्धि उत्पन्न करने वाले गुण को पृथक्त्व कहते हैं।

८. **परिमाण**- माप तोल आदि मान व्यवहार का जो कारणभूत गुण है वह परिमाण कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है-दैर्ध्यमान और गुरुत्वमान। अर्थात् जिसके द्वारा वस्तुओं का माप तोल लिया जा सके वह परिमाण है।

९. **संस्कार**-जिस गुण के द्वारा द्रव्यों के स्वभाविक गुण में परिवर्तन लाया जाता है उसे संस्कार कहते हैं जैसे चावल के अनेक संस्कार है जिनके द्वारा वह आदन, लाजा, चर्वण आदि में परिणत होकर विभिन्न गुण कर्मों का आश्रय बनता है।

वैशेषिक दर्शन में यह तीन प्रकार का माना जाता है- 1. वेग, 2. स्थितिस्थापक, 3. भावना।

१०. **अभ्यास**- किसी वस्तु का निरन्तर सेवन अभ्यास कहलाता है। चिकित्सा की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। व्यायाम आदि अभ्यास से ही लाभदायक हो सकते हैं। द्रव्य एवं कर्मों के चिकित्सा में अभ्यास हेतु इस गुण का निर्देश किया गया है।

न्यायोक्त चौबीस गुण

वैशेषिकगुणा रूपम् रसो गन्धस्ततः परम्।

स्पर्शः संख्या परिमितिः पृथक्त्वं च ततः परम्।।3

संयोगश्च विभागश्च परत्वं चापरत्वकम्।

बुद्धिः सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो यत्नो गुरुत्वकम्।।4

द्रवत्वं स्नेहसंस्कारवदृष्टं शब्द एव च।5 (कारि०)

अर्थात्- रूप (Colour), रस (Taste), गन्ध (Smell), स्पर्श (Touch), संख्या (Number), परिमाण (Magnitude), पृथक्त्व (Distinctness), संयोग (Conjuction), विभाग (Disjunction), परत्व (Remoteness), अपरत्व (Nearness), बुद्धि (Cognition), सुख (Pleasure), दुःख (Pain), इच्छा (Desire), द्वेष (Aversion), प्रयत्न (Effort), गुरुत्व (Heaviness), द्रवत्व (Fluidity), स्नेह (Viscidity), संस्कार (Tendency), अदृष्ट अर्थात् धर्म (Merit), अधर्म (Demerit), शब्द (Sound) आदि चौबीस गुणों का उल्लेख किया है।

अतो रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-संख्या-परिमाण-पृथकत्व-संयोग-विभाग-परत्व- बुद्धि-सुख-दुःख-इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-गुरुत्व-द्रवत्व-स्नेह-संस्कार-धर्म-अधर्म-शब्द आदि कुल चौबीस गुण है।

आयुर्वेद में चिकित्सोपयोगी 41 गुणों का वर्णन किया गया है। न्यायादि दर्शन ग्रन्थों में चौबीस गुणों का उल्लेख मिलता है। न्याय ने विशेष रूप से उन्हीं गुणों का वर्णन किया है जो नव कारण द्रव्यों में विशेष रूप से विद्यमान रहते हैं।

इनमें से वायु में 9 एवं तेज में 11, जल, पृथ्वी तथा आत्मा में 14, दिशा और काल में 5-5, आकाश में 6 तथा मन में 8 गुण होते हैं।

JAYPEE BROTHERS

गुणों की संख्या विवेचन

यद्यपि दर्शनशास्त्रों में सामान्यतः चौबीस गुणों का उल्लेख किया गया है, फिर भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं जो संख्या-भिन्नता प्रदर्शित करते हैं एवं संख्या के न्यून या अधिक होने को जिस युक्ति द्वारा सिद्ध करते हैं उनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

गुण संख्या निर्णय

गुणों की चौबीस संख्या परिगणना का आधार स्थिर नहीं है। फिर भी विद्वानों ने युक्तियों द्वारा इसका निर्णय करने का प्रयास किया है। इसका कारण यह है कि विभिन्न दार्शनिक अपने मतानुसार संख्या का निर्देश करते हैं।

१. **'महर्षि कणाद'** ने 17 गुणों का ही उल्लेख किया है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व-''संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष एवं प्रयत्न''। यहां संस्कृत में गणना समाप्ति पर ''प्रयत्नाश्च गुणाः'' कहने से 'च' का सहारा लेकर महर्षि प्रशस्तपाद ने संख्या 24 बताई है-

२. प्रशस्तपाद ने इसमें 7 गुणों की वृद्धि करते हुए कुल संख्या 24 बताई है। ये सात गुण- गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म एवं शब्द है। यथा-**च शब्दसमुच्चिताश्च-गुरुत्वद्रवत्वस्नेह- संस्कारा-दृष्टशब्दाः सप्तैवेत्येवं चतुर्विंशतिगुणाः।** (प्रशस्त० 410 पृ0 27)

३. **''शंकरमिश्र''** ने यह कहकर अपनी व्याख्या की है कि यद्यपि ये सात गुण सर्वविदित है अतः सूत्रकार ने इनकी व्याख्या नहीं की।

ते हि प्रसिद्धगुणभावा एवेति कण्ठतो नोक्ताः। (उपस्कारभाष्य वैशेषिक दर्शन)

४. **'नव्य न्याय'**- इन मतावलम्बियों ने केवल 21 गुणों का ही निर्देश किया है। क्योंकि नव्यनैयायिक-परत्व-अपरत्व का विप्रकृष्टत्व और सन्निकृष्टत्व या ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्व में अन्तर्भाव मानकर गणना कर लेते है तथा पृथक्त्व को अन्योन्याभाव का ही एक रूप स्वीकार कर लेते हैं।

५. **'दीपिका'**- (तर्कसंग्रह की टीका)।

इस टीकाकार ने लघुत्व, मृदुत्व और कठिनत्व को गुण माना है।

६. **'सिद्धान्त चन्द्रोदय'** ने आलस्य को भी पृथक् गुण बताया है।

इस प्रकार कुछ विद्वानों ने संख्यावृद्धि करने का भी प्रयास किया है। किन्तु यह सिद्ध किया गया है कि लघुत्व तो गुरुत्व का ही अभाव है और मृदुत्व और कठिनत्व संयोग की सहायता की क्रमिता पर आश्रित है। आलस्य प्रयत्न करने का विरोधी है। इसके लिए यदि यह शंका की जाय अधर्म तो धर्म का ही विरोधी है तो इस प्रकार उत्तर दिया जाता है, कि अधर्म केवल मात्र धर्म का ही अभाव नहीं है वह तो स्वयं पाप-कर्म-रूप एक पृथक् गुण है। यही शंका संयोग-विभाग-परत्व-अपरत्व और सुख दुःख के विषय में भी की जाती है। ये एक दूसरे के विपरीत होते हुए भी विरोधी नहीं हैं।

JAYPEE BROTHERS

कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि विवेचन अत्यन्त सूक्ष्म नहीं है क्योंकि लघुत्व को गुरुत्व का विरोधी तभी माना जा सकता है जबकि गुरुत्व का अर्थ भारीपन (Heaviness) किया जाये। किन्तु गुरुत्व का अर्थ वजन भी है। ऐसी अवस्था में लघुत्व का विरोधी नहीं अपितु क्रमिक न्यूनांश मात्र है। इसी प्रकार द्रवत्व संयोग आलस्य आदि में भी होगा।

चरकोक्त 41 गुणों का न्यायोक्त 24 गुणों में समन्वय

आयुर्वेद में वर्णित 41 गुणों का इन्हीं 24 गुणों में समावेश हो जाता है। केवल उपयोगिता की दृष्टि से आयुर्वेद में गुणों का विस्तार किया गया है। गुर्वादि 20 गुण एवं शब्दादि 5 गुण प्रधान रूप में उपयोग में आते हैं। इन्हीं 25 गुणों का विस्तार किया है। इनमें कुछ अप्रधान होने से तथा कुछेक के आधे गुण होने से विस्तार नहीं किया गया। जैसे-युक्ति एवं अभ्यास अधिक बताए गए हैं यद्यपि ये दोनों संयोग-परिमाण एवं संस्कार में अन्तर्भाव हो सकते हैं।

आयुर्वेद में-''सार्था गुर्वादयो बुद्धिप्रयत्नान्ताः परादयः'' सूत्र गुणों की संख्या के विषय में प्रयुक्त हुआ है। इसमें सार्था से रूप-रस-गंध-स्पर्श इन चार गुणों का ग्रहण, बुद्धि से बुद्धि का, प्रयत्नान्ता से, सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष तथा प्रयत्न इन पांच गुणों का ग्रहण तथा परादय से, शेष परत्व-अपरत्व-संयोग विभाग-पृथकत्व-परिमाण तथा संख्या इन सात गुणों का ग्रहण किया जाये तो यह गणना करने पर विशेष रूप से 24 गुणों का वर्णन हो जाता है। फिर भी आयुर्वेद में उपयोगिता की दृष्टि से वर्णन किये गए 41 गुणों में सार्था से 5, गुर्वादि 20, बुद्धि से प्रयत्नान्ता तथा 6 परादि 10 गुण होते हैं उनका इन्हीं 24 गुणों में अन्तर्भाव हो जाता है एवं व्यवहार की दृष्टि से विस्तार करने से विषय को समझने में सुविधा रहती है।

न्यायोक्त चतुर्विंशति गुणों का परिचय

न्याय के 24 गुणों में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संख्यया, परिणाम, संस्कार, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, धर्माधर्म, बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख प्रयत्न आदि है।

१. रूप

तत्र रूपं चक्षुर्मात्रग्राह्यो विशेषगुणः। (तर्क भाषा)

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्। (तर्क संग्रह)

'अर्थात्' चक्षु से ग्रहण एवं प्रत्यक्ष किये जाने वाले गुण को रूप कहते हैं अतः चक्षु द्वारा प्रत्यक्ष होने वाला रूप विशेष गुण है। अग्नि महाभूत का भी रूप विशेष गुण माना जाता है। यद्यपि संयोगादि गुण भी चक्षुग्राह्य है। किन्तु ये चक्षु के अतिरिक्त त्वक् इन्द्रिय से भी ग्रहण किये जाते हैं अतः रूप में रहने वाली रूपत्व जाति एवं रूप का अभाव यद्यपि चक्षुग्राह्य है, किन्तु ये दोनों गुण नहीं है। अतः लक्षण के गुण शब्द से विशेष गुण का ग्रहण करना चाहिए। पृथ्वी, जल और अग्नि में रूप गुण विद्यमान रहता है। जल और तेल परमाणुओं में नित्य, किन्तु कार्य रूप, जल और तेज में अनित्य रूप से रहता है। पृथ्वी के परमाणुओं में रूप, अग्नि संयोग का विरोधी है। आश्रय के नष्ट हो जाने पर इसका भी विनाश हो जाता

JAYPEE BROTHERS

है। यह सात प्रकार के हैं-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिस-शुक्ल और चित्र। पृथ्वी में सातों प्रकार का रूप माना जाता है। तेज का रूप भास्वर-शुक्ल है। जल में पाया जाने वाला रूप अभास्वर-शुक्ल है।

ऊपर बताए गए लक्षण में 'ग्राह्य' शब्द का अर्थ-''प्रत्यक्ष योग्य जाति का आश्रय होना'' किया गया है इससे अतिव्याप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि चक्षुमात्र से प्रत्यक्ष योग्य जाति रूपत्व है। वह चक्षु के रूप में भी विद्यमान है। मात्र शब्द पद का संयोग करने से केवल चक्षु से ही ग्रहण होने का निर्देश किया गया है। आयुर्वेद में रूप गुण की विशेष आवश्यकता देखी जाती है। द्रव्य पहचान, द्रव्य योगों का ज्ञान एवम् योग और रोगी के लक्षणों का रूप द्वारा ही विशेष ज्ञान किया जाता है।

२. रस

रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा॥ (कारि०)

रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।
रसो रसनेन्द्रियग्राह्यो विशेषगुणः। (त०भा०)

रसनार्थो रसस्तस्य..... (च०सू०1)

रसनाग्राह्यो गुणो रसः। (तर्क संग्रह)

अर्थात्- रसनेन्द्रिय (जिह्वा) से प्रत्यक्ष किये जाने योग्य विशेष गुण को रस कहा जाता है। यह पृथ्वी एवं जल में रहता है। पृथ्वी में यह रस छः प्रकार का है यथा- मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषाय। जल में केवल मधुर रस रहता है तथा पृथ्वी में यह पाकज है और जल में अपाकज होता है। यह नित्य, अनित्य भेद से दो प्रकार का है। जल में परमाणुओं का रस नित्य एवं परमाणु से भिन्न समस्त उत्पन्न होने वाले जल का रस अनित्य है। आयुर्वेद में इसी नियम के आधार पर रसों की उत्पत्ति में प्रधान कारण जल महाभूत को बताया है। आयुर्वेद में द्रव्यों का जितना ही महत्व गुणों के आधार पर है उससे अधिक रसों पर भी है। रसों द्वारा द्रव्यों की पहचान की जाती है। त्रिदोष पर प्रभावकारी होने से इनके वृद्धि और शमन में रसों की कारणता होती है।

३. गन्ध

''गन्धो घ्राणग्राह्यो विशेषगुणः।'' (तर्क भाषा)

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः। (तर्क संग्रह)

घ्राण से ग्रहण किये जाने योग्य विशेष गुण को गन्ध कहा जाता है। यहां भी ''विशेष गुण'' कहने का आशय यही है कि अन्य में न रहने वाला एवं घ्राण से प्रत्यक्ष होने वाला जो गन्धत्व है उसी का ग्रहण किया गया है। गन्ध केवल पृथ्वी में ही रहता है तथा अनित्य ही होता है। इसके दो भेद किये गए हैं। सुरभि (सुगन्ध) तथा असुरभि (दुर्गन्ध) जलादि में कभी-कभी गन्ध का अभाव होता है। किन्तु यह जल के साथ पार्थिव भाग के सम्पर्क से ही होता है। क्योंकि जल स्वयं गंधरहित है।

आयुर्वेद में शारीरिक पार्थिवांश की कमी को दूर करने हेतु एंव मानसिक विकारों में गन्ध का विशेष प्रयोग होता है।

४. स्पर्श

स्पर्शसत्वगिन्द्रियग्राह्यः। (प्रशस्तवाद)

JAYPEE BROTHERS

''स्पर्शस्त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो विशेषगुणः।'' (त०भा०)

त्वचा में स्पर्श द्वारा ग्रहण होने वाले विशेष गुण का नाम स्पर्श है। यह स्पर्श पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार द्रव्यों में रहता है। यह तीन प्रकार का है- 1. शीत, 2. उष्ण एवं 3. अनुष्णशीत।

शीत स्पर्श जल में, उष्ण स्पर्श तेज में एवं अनुष्णाशीत स्पर्श पृथ्वी तथा वायु में रहता है। सम्पूर्ण पृथ्वी का स्पर्श पाकज और अनित्य होता है। जल, तेज और वायु के परमाणुओं का स्पर्श नित्य तथा कार्यभूत जल, तेज तथा वायु का स्पर्श अनित्य होता है। वायु अग्नि के परमाणुओं के सम्पर्क में होने पर उष्ण एवं जल के सम्पर्क में आने पर शीतल हो जाती है। जल भी अग्नि के सम्पर्क से उष्ण हो जाता है।

आयुर्वेद में इस गुण के द्वारा ही द्रव्य की प्रकृति, रोग एवं रोगी के स्वभाव का ज्ञान किया जाता है।

५. संख्या

''संख्या स्याद् गणितम्। (च०सू० 26)

संख्या एकत्वादिव्यवहारहेतुः सामान्यगुणः। (त०भा०)

गणनाव्यवहारे तु हेतुः संख्याभिधीयते। (कारिकावली)

अर्थात् एक-दो तीन आदि के व्यवहार का कारणभूत जो सामान्य गुण है उसे संख्या कहा जाता है। संख्या एकत्व से लेकर परार्ध पर्यन्त (इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि से परार्ध दस परार्ध तक की सम्पूर्ण गणना) होती है। सबसे छोटी संख्या का नाम एकत्व तथा सबसे बड़ी संख्या का नाम परार्ध है। इन दोनों के मध्य अनेक संख्यायें हैं। यथा 2, 4, 6 से लेकर सौ, हजार, लाख, करोड़ आदि। उन्हीं सभी संख्याओं में 'एकत्व' संख्या 'नित्य' एवं 'अनित्य' भेद से दो प्रकार की होती है। अतः नित्य द्रव्यों में रहने वाली नित्य तथा अनित्य द्रव्यों में रहने वाली एकत्व संख्या अनित्य होती है। अनित्य एकत्व की उत्पत्ति, उसके आश्रय (जिसमें वह रहती है) में समवायि कारण में रहने वाली एकत्व संख्या से होती है। द्वित्व आदि सभी संख्यायें अनित्य होती है। इसमें द्वित्व का जन्म, द्वित्व का नाश, द्रव्य में द्वित्व का प्रत्यक्ष और उसका नाश, ये चार बातें छः क्षणों में उत्पन्न होती हैं। आयुर्वेद में रोग गणना, योगों में द्रव्य गणना, त्रिदोष, धातु एवं अवयवों की गणना में इसका प्रयोग होता है।

६. परिमाण

परिमाणः पुनर्मानम् (च०चू० 26)

परिमाणं मानव्यवहारासाधारणं कारणम्। (त०भा०)

इस लक्षण के अनुसार कोई द्रव्य जिससे मापा जाये वह परिमाण है-

परिमीयतेऽनेनेति परिमाणम्।

इसी के आधार पर परिमाण का यह लक्षण किया जाता है कि यह छोटा है, यह लम्बा है, यह चौड़ा है इत्यादि।

JAYPEE BROTHERS

यह परिमाण चार प्रकार का होता है–अणु, महान्, दीर्घ और ह्रस्व। कार्य द्रव्य में रहने वाले ये चारों परिमाण तीन प्रकार के होते हैं। संख्यायोनि, परिमाणयोनि और प्रचययोनि।

1. द्व्यणुक के परिमाण एवं त्रसरेणु के परिमाण में संख्या ही निमित्त कारण है अतः इसे संख्या परिमाण कहते हैं। क्योंकि द्व्यणुक में दो परमाणु एवं त्रसरेणु में छः परमाणु होते हैं।
2. परिमाणयोनि से तात्पर्य है कि परिमाण कारक जो परिभाषा से उत्पन्न हो जैसे चतुरणुक आदि में समवायि कारण त्र्यणुक आदि महत् परिमाण से उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में घट आदि का परिमाण, घटादि के कारण रूप कपाल आदि के परिमाण से उत्पन्न होता है अर्थात् जिसके अधिक या कम परमाणु होंगे उसके अनुरूप ही घट का परिमाण होगा अतः इस घटादि परिमाण को **''परिमाणजन्य परिमाण''** कहते हैं।
3. जो अवयवों के शिथिल संयोग से उत्पन्न हों उसे प्रचयजन्य परिमाण कहा जाता है क्योंकि प्रचय का अर्थ ही शिथिल संयोग होता है। इस शिथिल संयोग को उत्पन्न करने वाली क्रिया का नाम **'पिञ्जल'** है। जैसे धुनी हुई रूई का महत् परिमाण अपने आश्रय अर्थात् रूई के अवयवों से उत्पन्न होता है। आश्रय के नाश से जन्यपरिमाण नष्ट हो जाता है।

दीर्घ एवं ह्रस्व परिमाण

कुछ विद्वानों ने शंका की है कि महत् एवं दीर्घ में तथा अणु एवं ह्रस्व में क्या अन्तर है? देखा जाये तो सभी महत् परिमाण और दीर्घ तथा सभी अणु परिमाण को ह्रस्व नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आकाशादि विभु द्रव्यों को महान् तो कहा जा सकता है किन्तु दीर्घ नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार परमाणु के परिमाण को अणु कहा जाता है, ह्रस्व नहीं कहा जा सकता। क्योंकि किसी द्रव्य में दीर्घत्व एवं ह्रस्वत्व का जो व्यवहार होता है, मुख्यतया उसके अवयवों की दीर्घता (बड़ा होना) तथा ह्रस्वता (छोटापन) पर निर्भर होता है। अतः विभु एवं परमाणु द्रव्यों के निरवयव होने से उनमें दीर्घ एवं ह्रस्व का व्यवहार होता ही नहीं है। इस कारण ऐसा ज्ञात होता है कि दीर्घ और ह्रस्व ये दोनों अन्य महत् परिमाण परस्पर एक-दूसरे के अवान्तर भेद हैं न कि सामान्यतः महत् और अणु के समान मानस स्वतन्त्र भेद हैं। यही कारण है कि परिमाण का वर्गीकरण करते समय दीर्घ और ह्रस्व के नाम की गणना भी की है जो बाद में की है।

इसलिए तर्कभाषा के व्यवहार का कहना है कि यदि परिमाण का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाए तो अधिक अच्छा रहेगा यथा परिमाण के दो भेद होते हैं–अणु और महत्। उन दोनों के दो भेद हैं-नित्य और अनित्य। अनित्य महत् के दो भेद हैं दीर्घ एवं ह्रस्व और दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। इसमें किसी प्रकार की शंका करने का प्रश्न ही नहीं रहेगा।

आयुर्वेद में औषध मात्रा के माप तोल हेतु परिमाण का विशेष महत्व देखा जाता है। यदि परिमाण का ज्ञान न हो तो औषध व्यवस्था (चाहे निर्माण रूप में हो अथवा रोगी को दी जाने वाली मात्रा हो) में कठिनाई होगी।

७. पृथक्त्व

प्रथक्त्वं पृथक् व्यवहारसाधारणं कारणम्। (त०भा०)

पृथक्त्वं स्यादसंयोगो वैलक्षण्यमनेकता। (चरक)

JAYPEE BROTHERS

अर्थात् यह द्रव्य इस द्रव्य से पृथक् है इस प्रकार के व्यवहार का जो असाधारण कारण है उसे पृथकत्व कहा जा सकता है। यह सभी द्रव्यों का साधारण गुण है। इसके दो भेद हैं एक-पृथकत्व और द्वि-पृथक्त्व आदि। नित्य द्रव्य में रहने वाला एकपृथक्त्व नित्य एवं अनित्य द्रव्य में रहने वाला एक-पृथक्त्व अनित्य होता है तथा द्विपृथक्त्व आदि महत् भी पृथक्त्व हैं वे अनित्य होते हैं।

आयुर्वेद में असंयोग, वैलक्षण्य और अनेकता नाम से तीन भेद किए हैं। 1. त्रैकालिकपृथकता एवं असंयोग, 2. स्वाभाविक पृथकता या वैलक्षण्य, 3. एक जातिगत द्रव्यों में अनेकरूप पृथक्त्व आदि। जैसे-जिसका कभी संयोग नहीं हो सकता हो, विन्ध्याचल एवं हिमालय-यह असंयोग पृथकत्व है। विजातीय पदार्थों का पृथकत्व वैलक्षण्य या स्वाभाविक है। एक जाति के द्रव्यों की पृथक्ता अनेकत्व है।

८. संयोग

संयोगः संयुक्तव्यवहारहेतुर्गुणः। (त०भा)

अप्राप्तयोः प्राप्तिः संयोगः। (करणाद्)

योगः सहसंयोग उच्यते। (चरक)

यह द्रव्य इस द्रव्य से संयुक्त है। इस व्यवहार का असाधारण कारणभूत जो गुण है इसे संयोग कहा जाता है। यह सभी द्रव्यों में रहने वाला एक सामान्य गुण है। जब दो द्रव्य आपस में इस प्रकार समीप हो कि उनके मध्य कोई व्यवधान न हो तब उन द्रव्यों का आपस में संयोग होता है।

संयोग के तीन भेद किए गए हैं :- 1. अन्यतरकर्मज, 2. उभयकर्मज, 3. संयोगज।

1. **अन्यतरकर्मज**- अन्यतरकर्मज का अर्थ है, संयुक्त होने वाले द्रव्यों में किसी एक ही द्रव्य के कर्म से उत्पन्न होने वाला। जैसे किसी पक्षी का सूखे पेड़ (ठूंठ) के साथ होने वाला संयोग। यहां प्रधान रूप से एक ही द्रव्य का दूसरे से होने वाला सम्बन्ध कहलाता है।
2. **उभयकर्मज संयोग**- इसका अर्थ है दोनों द्रव्यों के संयुक्त कर्म से उत्पन्न होने वाला संयोग जैसे दो पहलवानों का अखाड़े में लड़ने के लिए आने पर एक साथ झपटना अथवा दो भेड़ों का लड़ने के लिए एक साथ शिर का टकराना आदि।
3. **संयोगज**-इसका अर्थ संयोग से उत्पन्न होने वाला मेल है। कारण एवं अकारण के परस्पर संयोग से उत्पन्न होने वाला कार्य एवं अकार्य का परस्पर संयोग, संयोगज संयोग कहलाता है। जैसे वृक्ष के साथ, मनुष्य के हाथ का संयोग होना। यहां मनुष्य का शरीर उसके हाथ का अवयवी (समुदाय) होने से कार्य है एवं वृक्ष उसका अकार्य है। अतः संयोग कार्य और अकार्य का संयोग है।

   न्यायदर्शन के अनुसार संयोग का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया। संयोग के दो भेद हैं-1. जन्य और 2. अजन्य।

   अजन्यसंयोग का कोई भेद-प्रभेद नहीं है यह विभु द्रव्यों में रहता है। इस भेद से किसी भी प्रकार की शंका का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि आत्मा, काल, दिशा, आकाश आदि के विभु गुण का वर्णन इनके स्वतन्त्र अध्यायों में कर दिया गया है। अन्यथा आकाश, काल आदि के ये भेद युक्तिसंगत नहीं बैठते हैं।

JAYPEE BROTHERS

यह संयोग सभी 9 कारण द्रव्यों और कार्य द्रव्यों में भी होता है। इसे प्रकारान्तर में एककर्मज, द्वन्द्व कर्मज और सर्वकर्मज भी नाम दिए गए हैं। द्रव्य एवं रोग लक्षणों के होने वाले संयोग का इसी से ज्ञान होता है।

९. विभाग

विभागोऽपि विभक्तप्रत्ययहेतुः। (त०भा०)

विभागस्तु विभक्तिः स्याद् वियोगो भागशो ग्रहः। (च०सू० 26)

संयोगनाशको गुणो विभागः। (वै० दर्शन)

प्राप्ति-पूर्विका अप्रातिर्विभागः। (कणाद)

जो गुण यह बताने में असाधारण कारण हो कि यह द्रव्य इस द्रव्य से विभक्त है उसे 'विभाग' कहते हैं। यह विभाग दो द्रव्यों में आश्रित रहता है। अर्थात् जो द्रव्य आपस में संयुक्त रहते हैं वे ही परस्पर विभक्त होते हैं। अतः विभाग संयोग का ठीक विपरीत होता है। इस विभाग संयोग की विशेषता बताते हुए इसके तीन भेद किये हैं- 1. अन्यतर कर्मज, 2. उभयकर्मज और 3. विभागज।

1. जब किन्हीं दो द्रव्यों में होने वाला विभाग उनमें से किसी एक मात्र के कर्म से उत्पन्न हो, तब **'अन्यतरकर्मज'** या एककर्मज कहा जाता है। जैसे-पक्षी का पेड़ से उड़ जाना।
2. अपने आश्रयभूत दोनों के कर्म से उत्पन्न होने वाला विभाग **'उभय कर्मज'** कहा जाता है। जैसे अखाड़े में लड़ने वाले दो पहलवानों का पैंतरा बदलने के लिए एक साथ अलग होना या दो मेंढ़ों के लड़ते हुए वार करने के लिए एक साथ अलग होना।
3. **'विभागज विभाग'** दो कारणों से होता है। कभी कारण मात्र के विभाग से और कभी कारण और अकारण के विभाग से होता है। कारण मात्र विभाग में वस्तु के कारणों का उत्तरोत्तर विभाग। जैसे पट (कपड़ा) विनाश में वस्तुओं का उत्तरोत्तर विभाग होना। कारण और अकारण के विभाग से कार्य और अकार्य के विभाग की उत्पत्ति होती है। जैसे मनुष्य अपने हाथ को किसी दिशा में फैलाना चाहे तो उसके प्रयत्न से हाथ में क्रिया होती है। दूसरे क्षण, उस हाथ का, जहां से उसे आगे बढ़ाना है, यही विभाग होता है। यह शरीर का अवयव होने से उसके कारण रूप हाथ और अकारण रूप आकाश भाग में आश्रित होने से इसे **'कारणाकारण'** विभाग कहा जाता है।

विभाग का नाश भी दो कारणों से होता है-एक कारण है विभक्त होने वाले द्रव्य का नये स्थान के साथ संयोग। दूसरा कारण है, विभाग के आश्रयभूत द्रव्य का नाश। आयुर्वेद में परस्पर गुण, औषध, रोग आदि में इसका उपयोग किया जाता है।

१०-११ परत्व और अपरत्व

परत्वं चापरत्वं च द्विविधं परिकीर्तितम्।
दैशिकं कालिकं चापि मूर्तं एंव तु देशिकम्।।
परत्वं मूर्तसंयोगभूयस्त्वज्ञानतो भवेत्।
अपरत्वं तदल्पत्वबुद्धितः स्यादितीरितम्।। कारिकावली (121-22)

देशकालवयोमानपाकवीर्यरसादिषु परापरत्वे। (च०सू० 26)

JAYPEE BROTHERS

परापरव्यवहारहेतु परत्वाऽपरत्वे। (कणाद)

परत्वापरत्वे पराऽपरव्यवहारासाधारणकारणे। (त०भा)

यह इससे 'पर' है अर्थात् दूर या ज्येष्ठ है इस प्रकार के व्यवहार का जो असाधारण कारण वाला गुण होता है उसे **परत्व** कहा जाता है।

यह इससे 'अपर- अर्थात् समीप या कनिष्ठ है इस प्रकार के व्यवहार के असाधारण कारणभूत गुण को **'अपरत्व'** कहा जाता है।

परत्व एवं अपरत्व के दो भेद हैं-1. काल द्वारा किया जाने वाला कालकृत 2. दिशा द्वारा किया जाने वाला दिक्कृत।

कालकृत भेद

जब अपरत्व एवं परत्व काल द्वारा उत्पन्न होते हैं तब कालकृत कहा जाता है। जिन द्रव्यों में इनकी उत्पत्ति होती है उनमें थोड़ा अथवा अधिक सूर्य क्रिया रूप गौण अथवा मुख्य काल के संयोग रूप परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान होने पर ही उन द्रव्यों में उत्पत्ति ज्ञात होती है। जैसे युवा एवं वृद्ध के शरीर अर्थात् वृद्ध की अपेक्षा युवा शरीर अल्पतर काल से सम्बद्ध है तथा वृद्ध शरीर युवा की अपेक्षा अधिकतर काल से सम्बद्ध है। इस प्रकार के ज्ञान में निमित्त कारण के सहयोग से असमवायी कारण से युवा मनुष्य में अपरत्व या कनिष्ठता की उत्पत्ति होती है तथा दूसरे की अपेक्षा बुद्धि रूप निमित्त कारण के सहयोग में काल शरीर संयोग रूप असमवायि कारण से वृद्ध में परत्व या ज्येष्ठत्व की उत्पत्ति होती है।

दिक्कृत भेद

अपरत्व एवं परत्व दिक् द्वारा उत्पन्न होते हैं तब उन्हें दिक्कृत कहा जाता है। जब एक ही दिशा में स्थित दो द्रव्यों में यह द्रव्य से सन्निकृष्ट है इस ज्ञान के सहयोग में दिक् द्रव्य के परस्पर संयोग से 'सन्निकृष्ट द्रव्य' में अपरत्व की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार यह द्रव्य इस द्रव्य से विप्रकृष्ट है इस बुद्धि के सहयोग से एवं दिक् द्रव्य के सहयोग से विप्रकृष्ट द्रव्य में परत्व की उत्पत्ति होती है। इसमें भी अल्पतर एवं बहुतर संयुक्त संयोग रूप है। अर्थात् जो मनुष्य जिस द्रव्य को अपने सन्निकृष्ट (समीप) समझता है उस द्रव्य और उस मनुष्य के बीच संयुक्त संयोग अल्प होता है तथा जिस द्रव्य को अपने से विप्रकृष्ट (दूर) समझता है तब उस द्रव्य एवं उस मनुष्य के बीच के संयुक्त संयोग अधिक होते हैं। अल्प संयोग वाले द्रव्य में दिक्कृत अपरत्व और अधिक संयुक्त वाले द्रव्यों में दिक्कृत परत्व होता है।

आयुर्वेद में परत्व और अपरत्व गुण का देश-काल-अवस्था-मान-विपाक-वीर्य और रसादि की उत्तमता और हीनता को बताने वाले हैं। कोई देश वातिक प्रकृति वाले के लिए परत्व है किन्तु पित्तप्रकृति वाले के लिए अपरत्व है। इसी प्रकार ग्रीष्म-काल पित्त रोगियों को अपर और श्लेष्मिक रोगियों के लिए पर है। अग्निविकृति रोगियों (मनुष्यों) के लिए अल्पपरिमाण भोजन पर तथा अधिक परिमाण भोजन अपर होता है। इसी प्रकार अनुकूल और प्रतिकूल रस, वीर्य, विपाक आदि में इसी विषय का ज्ञान किया जाता है।

१२. बुद्धि

सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः। (त०स०)

अनुव्यवसायगम्यज्ञानत्वमेव लक्षणम्॥ (तत्त्व दीपिका)

JAYPEE BROTHERS

व्यवहारमात्रहेतुर्ज्ञानबुद्धिः प्रकीर्तिता।
सा चापि द्विविधा ज्ञेया ह्यनुभूतिः स्मृतिस्तथ॥

समस्त व्यवहार के कारणभूत गुण को बुद्धि कहते हैं। अनुव्यवसायगम्य ज्ञान बुद्धि होती है। किसी वस्तु मात्र के ज्ञान को प्राप्त करना व्यवसाय और उस व्यवसाय का ज्ञान अनुव्यवसाय कहलाता है। अनुव्यवसाय रूप ज्ञान को बुद्धि कहते हैं। बुद्धि आत्मा का रूप हैं। अन्तःकरण और बाह्यकरण के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है वही बुद्धि कहलाती है जैसे वह घट है, यह पट है। जो अर्थविषयक हो वही बुद्धि है। सम्पूर्ण व्यवहार के असाधारण कारणभूत गुण का नाम ज्ञान है। ज्ञान ही बुद्धि का नामांतर है। न्याय वैशैषिक दर्शनानुसार बुद्धि आत्मा का विशेष गुण है। ज्ञान, बोध, प्रतीति, प्रत्यय, उपलब्धि आदि बुद्धि के ही नामान्तर हैं।

आयुर्वेद में बुद्धि को पांच वर्गों में विभक्त किया गया है–धी, धृति, स्मृति, अहंकार और चेतना। परन्तु नैयायिकों ने बुद्धि के नित्य और अनित्य दो भेद मानते हुए अनित्य बुद्धि को अनुभव और स्मृति रूप दो वर्गों में विभक्त किया है तथा स्मृति को प्रमा और अप्रमा की अनुगामिनी माना है। जबकि अनुभव को प्रमा और अप्रमा दो भागों में बांटा गया है। स्मृति से भिन्न ज्ञान का नाम अनुभव है अथवा इन्द्रियजन्य यथार्थ ज्ञान अनुभव कहलाता है। स्मृति केवल संस्कार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान है। अनुभवजन्य भावना ही संस्कार है।

प्रमा का उदय गुण सहकृत प्रमाण और अप्रमा का उदय घोष सहकृत प्रमाण से मानकर अप्रमा को संशय, विपर्यय और आहार्य इन तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

आयुर्वेद में इस गुण का सर्वाधिक उपयोग ज्ञान की दृष्टि से किया जाना आवश्यक समझते हुए हर चिकित्सा कर्म में शरीर की चेतनता, आत्मा के भाव, मन की प्रक्रिया और इन्द्रियों के विषय ग्रहण व्यापार हेतु बुद्धि का वर्णन किया गया है।

१३. सुख

प्रीतिः सुखम्। (त०भा०)

अनुग्रहलक्षणम् सुखम्। अनुग्रहस्वभावं तु सुखम्। धर्मजन्यं अनुकूलवेदनीयं गुणः सुखम्॥ (प्रशस्तपाद)

सुखं तु जगतामेव काम्यं धर्मेण जायते। 144 (कारिकावली)

अर्थात् अनुग्रह लक्षण अथवा अनुग्रह स्वभाव को सुख कहते हैं। धर्मजन्य अनुकूल ज्ञान ही सुख है। प्रीति का नाम ही सुख है। इच्छित वस्तु का प्राप्त होना, आत्मा, मन, इन्द्रिय के संयोग होने पर अनुकूल प्रतीति एवं अनुराग को उत्पन्न करने वाला गुण सुख कहलाता है। इससे मन और हृदय प्रसन्न होते हैं। उसके वश में होने वाले सभी कार्य सुखदायी होते हैं।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च बिना धर्मात् तस्माद्धर्मपरो भवेत्। (अ०हृ०सू०)

संसार की इच्छाओं का विषय सुख है जो धर्म से जन्य है। काम्य का अर्थ इच्छाओं का समन्वय होता है। सत्व गुण का परिणाम सुख होता है। भारतीय विवेचकों के अनुसार सुख वह है जिसकी इच्छा किसी अन्य वस्तु की इच्छा के अधीन न हो। इन्द्रियों की कोमलता, स्फूर्ति, अनासक्ति, प्रेम, क्षमा, संतोष, इच्छा, सरलता, विवेक आदि सद्गुण सुख के ही रूप है। संक्षेप में प्राणी मात्र के अनुकूल स्थिति का नाम ही

JAYPEE BROTHERS

सुख है अर्थात् सभी प्रकार की इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति सुख उत्पन्न करने वाली होती है। आयुर्वेद में रोग निवारण या सुखावाप्ति भी इसी के अन्तर्गत आती है।

१४. दुःख

पीड़ा दुःखम्। (ता०भा०)

उपतापलक्षणम् दुःखम्।
अधर्मजन्यं प्रतिकूलवेदनीयं गुणो दुःखम्। (प्रशस्तपाद)

सर्वेषां प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्। (त०सं०)

अधर्मजन्यं दुःखं स्यात्प्रतिकूलं सचेतसाम्। (145) (कारिकावली)

अर्थात् उपघात लक्षण वाला दुःख होता है। अधर्म से उत्पन्न प्रतिकूलवेदनीय गुण को दुःख कहते हैं। जो आत्मा, मन और इन्द्रिय के प्रतिकूल हो, उसे दुःख कहते हैं।

प्राच्यशास्त्रियों के अनुसार जिसे कोई प्राणी न चाहे और जो आत्मा में उत्पन्न हो उसे दुःख कहते हैं। सभी प्राणी दुःख को दूर करने के लिए दृढ़संकल्प होते हैं अतः दुःख वह है जिसे कोई प्राणी न चाहे।

समस्त प्राणियों को प्रतिकूल लगने वाला भाव दुःख है। कुछ दार्शनिकों के मतानुसार दुःख के तीन भेद हैं। जो दुःख 1. शरीर के भीतर किये जाने वाले उपायों से मिले उन्हें आध्यात्मिक, 2. प्राणियों से प्राप्त दुःख आधिभौतिक और 3. ग्रह आदि से उत्पन्न दुःख को आधिदैविक कहते हैं। आध्यात्मिक दुःख के दो भेद हैं-शारीरिक एवं मानसिक। रोगमूलक, शारीरिक दुःख है तथा काम, क्रोध आदि मानसिक दुःख कहलाते हैं अतः दुःख उसको समझना चाहिए जिसमें मन, हृदय आदि अप्रसन्न हों तथा जिससे श्वास-प्रश्वास आदि क्रियाएं अस्त-व्यस्त हो जाएं।

रजोगुण का परिणाम दुःख होता है। मान, मद, मत्सर, शोक इसी के ही रूप हैं।

१५. इच्छा

निर्दुःखत्वे सुखे चेच्छा तज्ज्ञानात्वे जायते। 146 (कारिकावली)

राग इच्छा। (त०भा०)

'इच्छा कामः'। (तर्क संग्रह)

किसी विषय वस्तु की कामना को इच्छा कहते हैं। वस्तु ज्ञान होने पर यदि मनुष्य की इच्छा उस विषय में न हो तो उसकी प्रवृत्ति उस ओर कभी नहीं हो सकती अतः इच्छा उस गुण को कहते हैं। जो ज्ञान से उत्पन्न हो और प्रयत्न को उत्पन्न करे। **'स्वार्थं परार्थं वाऽप्राप्त 'प्रार्थनेच्छा' प्रशस्तपाद** के अनुसार अपने लिए अथवा किसी दूसरे के लिए अप्राप्त वस्तु की कामना करना **'इच्छा'** कहलाती है। इच्छा प्रायः उसी वस्तु की होती है जिसको प्राप्त करने के उपाय का ज्ञान हो, परन्तु बहुधा इच्छा होने पर भी कभी-कभी प्रयत्न नहीं होता वह इसलिए कि मनुष्य में उस समय होने वाला दुर्लभत्वज्ञान का कोई न कोई प्रतिबन्धक आ जाता है अतः इच्छा प्रयत्न के प्रति अबाधित कारण है। ज्ञान आत्मा में होता है अतः वह आत्मा का गुण है।

JAYPEE BROTHERS

इच्छा से ही धर्म, अधर्म, स्मृति तथा प्रयत्न में प्रवृत्ति होती है। काम, अभिलाषा, राग, संकल्प, लोभ आदि इच्छा के ही भेद है। दार्शनिक ग्रन्थों में कामना आदि इच्छा के अर्थ में प्रचुर रूप से पाये जाते हैं। **'काम्यन्ते इति कामाः'** इसके अनुसार काम वस्तु को **'काम'** कहा गया है। भोजन की इच्छा को **अभिलाषा** कहते हैं। एक ही विषय में पुनः-पुनः इच्छा को **'राग',** भविष्य में करने की इच्छा को **संकल्प** तथा अनुचित उपायों से किसी वस्तु की प्राप्ति **लोभ** आदि स्वरूप इच्छा के ही भेद हैं।

इच्छा ज्ञान के समीप तृतीयक्षणविनाशी होती है। सजातीय इच्छाधारा के अन्दर चरम इच्छा की निवृत्ति फल की प्राप्ति से होती है अतः फल प्राप्त होने पर सजातीय इच्छा कुछ क्षण के लिए रुक जाती है।

सामान्यतः इच्छा के दो भेद हैं (क) नित्य और (ख) अनित्य। ईश्वर की इच्छा को नित्य और जीव की इच्छा को अनित्य कहा जाता है। अनिच्छा के भी दो भेद किए हैं फलेच्छा और उपायेच्छा। फल भी दो प्रकार के होते हैं भावात्मक और अभावात्मक। भावात्मक फल का नाम सुख और अभावात्मक फल है दुःख की निवृत्ति। आयुर्वेद में भी यह आत्मगुण है। अतः जीव शरीर प्रत्येक समय सुखप्राप्ति की इच्छा करता है। शरीर में रोग की निवृत्ति ही स्वास्थ्यरूप सुख की प्राप्ति है एवं वेदना की सर्वथा निवृत्ति को मोक्ष कहा है।

१६. द्वेष

प्रज्वलनात्मको द्वेषः। यस्मिन् सति प्रज्वलितमिवात्मानं मन्यते स द्वेषः। (प्र०पा०)

क्रोधो द्वेषः। (त०सं०)

द्विष्टसाधनताबुद्धिर्भवेद्द्वेषस्य कारणम्। (कारिकावली 49)

अर्थात् (क) द्वेष ज्वलानत्मक होता है जिसके होने पर मनुष्य स्वयं को प्रज्वलित की भांति अनुभव करे वह द्वेष कहलाता है। (ख) क्रोध को ही द्वेष कहते हैं। क्योंकि किसी वस्तु अथवा किसी विषय में अनिच्छा रखना या घृणा करना ही द्वेष कहलाता है। इच्छा के विपरीत विषयों में द्वेष होता है। दुःख अथवा दुःख के भावों के स्मरण से आत्मा व मन के संयोग से यह उत्पन्न होता है।

द्वेषसाधकज्ञान द्वेष का कारण निमित्त कारण है। द्वेष दो प्रकार का है एक दुःखविषयक और दूसरा दुःखोपायविषयक। प्रथम में दुःख ज्ञान का कारण है। दूसरे में बलवत् द्वेषसाधनता ज्ञान का कारण है और बलवद् इष्टसाधनता ज्ञानप्रतिबन्धक है। अतएव अनिवार्य दुःखों के जनक पाप के प्रति द्वेष नहीं होता। द्वेष के कारण ही धर्माधर्म, स्मृति, प्रयत्न आदि में जो प्रवृत्ति होती है उसमें भी कारण ही है। क्रोध, द्रोह, अक्षमा, अमर्ष आदि इसी द्वेष के विषय बताए गए हैं। सामान्यतया व्यक्ति की भावनाओं के विपरीत अथवा प्रकृति के विपरीत किसी के द्वारा किये जाने वाले अनिष्ट कर्म से द्वेष की उत्पत्ति होती है।

१७. प्रयत्न

कृतिः प्रयत्नः। (त०सं०)

स द्विविधः जीवनपूर्वकः, इच्छाद्वेषपूर्वकश्चेति। (प्र०पा)

स त्रिविधः-प्रवृत्ति, निवृत्ति, जीवनयोनियत्नरूपश्च। (अन्यत्र)

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा जीवनकारणम्।
एवं प्रयत्नत्रैविध्यं तांत्रिकैः परिकीर्तितम्। (कारिकावली)

JAYPEE BROTHERS

कृति को प्रयत्न कहा जाता है अथवा कार्य आरम्भक विशेष गुण का नाम ही प्रयत्न है। कर्तृनिष्ठ धर्म का नाम **'कृति'** है तथा कृति **'प्रयत्न'** को कहा जाता है। **'चेष्टा'** को भी प्रयत्न कहा जाता है। प्रशस्तपाद ने **'जीवनपूर्वक'** व **'इच्छापूर्वक'** दो प्रकार के प्रयत्न बताये हैं। कुछ विद्वानों ने **'प्रवृति', 'निवृत्ति'** तथा **'जीवनयोनि'** नामक तीन प्रकार का **'प्रयत्न'** बताया है।

यत्न अथवा प्रयत्न उस गुण को कहते हैं जो इच्छा तथा द्वेष से उत्पन्न होता है तथा जो चेष्टा को उत्पन्न करने वाला हो। शरीर के लिए हित पदार्थों की प्राप्ति तथा अहित पदार्थों के परिहार के लिए की गई चेष्टाओं को **''प्रयत्न''** कहते हैं।

प्रवृत्ति- **''इच्छाजन्यो गुणः प्रवृत्तिः''** अर्थात् किसी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए की गई **'चेष्टा'** को **'प्रवृत्ति'** कहते हैं। जैसे सुन्दर फूल या फल को देखकर प्राप्त करने के लिए किया गया **'प्रयत्न'**।

निवृत्ति- **''द्वेषजन्यो गुणो निवृत्तिः''** अनिच्छित वस्तु के परिहार हेतु किये गए प्रयत्न का नाम **निवृत्ति** है। जैसे सर्प आदि दशंक जीवों को देखकर उसे हटाने के लिए किया गया प्रयत्न।

जीवनयोनि- **''जीवनादृष्टजन्यो गुणो जीवनयोनिः।''** जीवन रूप अदृष्टजन्य गुण जीवनयोनि है, जो प्राणसंचार का कारण है अर्थात् निद्रावस्था अथवा मूर्च्छावस्था में भी श्वास क्रिया निरन्तर चलती रहती है। शरीर के विभिन्न अवयवों और पेशियों के कार्य, दोष, धातु व मलों की प्राकृतिक क्रियाओं में जीवनयोनि प्रयत्न को ही कारण माना गया है। ज्ञानोत्पत्ति क्रम में भी विषय, मन तथा आत्मा की ज्ञान धारणा प्रक्रिया भी इसी पर आधारित हैं यदि यह कहा जाये कि ये क्रियायें अनायास ही होती हैं इसलिए जीवनयोनि यत्न नहीं मानना चाहिए किन्तु श्वास-प्रश्वास, प्राणायाम आदि में बिना प्रयत्न के न्यूनाधिकता नहीं आ सकती, अतः मानना आवश्यक है। ये तीनों भेद अनित्य प्रयत्न के कहे गए हैं। नित्य प्रयत्न का कोई भेद नहीं होता क्योंकि वह केवल ईश्वर में होता है।

प्रशस्तपाद द्वारा इच्छाद्वेषपूर्वक नाम का प्रयत्न प्रवृत्ति रूप ही है। इच्छा से प्रवृत्ति होती है।

१८. गुरुत्व

''गुरुत्वं आद्यपतनाऽसमवायि कारणम्।'' (त०भा)

आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् पृथ्वीगतवृत्तिः। (त०सं०)

किसी वस्तु के ऊपर से नीचे की ओर गमन करने की क्रिया का नाम पतन है। यह क्रिया जिस वस्तु में होती है वह उसका समवायि कारण होती है। वस्तु का यह भारीपन उसका असमवायि कारण होता है। वस्तु का यह भारीपन ही **गुरुत्व** है अतः जल एवं पृथ्वी के पतन कर्म का कारण भी गुरुत्व ही है।

यह नित्य अनित्य भेद से दो प्रकार का है। नित्य में रहने वाला नित्य है और अनित्य में रहने वाला अनित्य है। नवीन वैज्ञानिक वायु में भी गुरुत्व मानते हैं उनकी युक्ति यह है कि रबड़ की गेंद आदि में वायु भर देने के बाद गेंद आदि का गुरुत्व-भार कुछ बढ जाता है। वह वायु का ही गुरुत्व माना जा सकता है, किन्तु प्राचीन विचार के अनुयायी कहते हैं कि उसमें वायु के साथ कुछ पृथ्वी के भी सूक्ष्म भाग चले गए हैं उन्हीं का गुरुत्व वहां प्रतीत होता है। वायु में गुरुत्व नहीं है। कोई भी वस्तु जब नीचे गिरने लगती है तो उसमें सर्वप्रथम जो पतन क्रिया होती है वह गुरुत्व के कारण ही होती है। बाद में क्रिया की परम्परा बन जाती है, यह वस्तु गिरती चली जाती है इसलिए लक्षण के लिए वाक्य में **आद्यपतन** शब्द दिया गया है।

JAYPEE BROTHERS

गुरुत्व गुण से आयुर्वेद में बृंहण कर्म, तर्पण कर्म लिए जाते हैं। यह श्लेष्मावर्द्धक, वायुशामक तथा शरीर में देरी से पाक होने वाले हैं। सामान्यतः तथा गुणयुक्त द्रव्य में शरीर को पुष्ट करने की शक्ति हो, उसे गुरु कहा जाता है।

१९. द्रवत्व

सांसिद्धिकं द्रवत्वं स्यान्नैमित्तिकमथापरम्॥ 154

सांसिद्धिकं तु सलिलं द्वितीये क्षितितैजसोः।
परमाणौ जले नित्यमन्यत्रानित्यमिष्यते॥ 155 (कारिकावली)

''द्रवत्वं स्यन्दनकर्मकारणम्''। (प्रशस्तपाद)

''द्रवं प्रक्लेदनः सान्द्रः स्थूलः स्याद् बन्धकारकः।'' (सु०सू० 43/520)

आद्यस्यन्दनसमवायिकारणं द्रवत्वम्। पृथिव्यपतेजोवृत्तिः। (सु०सं०)

दो प्रकार का द्रवत्व होता है। एक सांसिद्धिक अर्थात् स्वयं सिद्ध और नैमित्तिक जल में सांसिद्धिक द्रवत्व व पृथ्वी तथा तेल में नैमित्तिक द्रवत्व होता है। जल के परमाणु में नित्य द्रवत्व होता है अन्यत्र अनित्य माना गया है।

प्रशस्तपाद ने द्रवत्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि जहां द्रवत्व गुण विद्यमान रहता है वहां स्पन्दन कर्म की प्रवृत्ति अवश्व होती है। (बहाव या फैलने का नाम स्पन्दन है)।

द्रवत्व विशेष रूप से दो प्रकार का होता है। (1) सांसिद्धिक व (2) नैमित्तिक। जल के परमाणुओं में द्रवत्व नित्य है, किन्तु पृथ्वी के परमाणुओं में द्रवत्व अनित्य है। दूसरा नैमित्तिक द्रवत्व है जो स्वर्ण आदि तेज रूप में प्राप्त होता है। तेज संयोगजन्य द्रवत्व का नाम ही नैमित्तिक द्रवत्व है। स्यन्दन में द्रवत्व समवायि कारण है किन्तु चूर्ण पिण्ड आदि में असमवायि कारण होता है।

आयुर्वेद दृष्टि से जिस गुण के कारण कोई भी द्रव्य शरीर में आर्द्रता उत्पन्न करे व सर्वत्र व्याप्त होने की प्रवृत्ति भी रखे उसे द्रवत्व बताया है, अतः जल की अधिकता वाले द्रव्यों में द्रवत्व गुण की उपस्थिति बताई गई है। जल की अधिकता के कारण द्रव्य, स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों में सरलता से प्रविष्ट होकर संचार कर सकते हैं।

२०. स्नेह

स्नेहो जले स नित्योऽणावनित्योऽवयविन्यसौ।
तैलान्तरे तत्प्रकर्षाद्दहनस्यानुकूलता॥ (कारि)

स्नेहोऽयं विशेषगुणः। संग्रहमृजादिहेतुः॥ (प्र०पा०)

स्नेहमार्दवकृत् स्निग्धो बलवर्णकरस्तथा। (सु०सू० 46/516)

स्नेह जल में रहने वाला गुण है। नित्य और अनित्य दो प्रकार का हेाता है। नित्य स्नेह जलीय परमाणुओं में तथा अनित्य स्नेह द्व्यणुक जल में रहता है। तैल आदि में स्नेह की अधिकता होने से ज्वलन के अनुकूल होते हैं।

प्रशस्तपाद ने स्नेह को जल का विशेष गुण बताया है। इसकी भी नित्यानित्य आदि निष्पत्तिया दी गई है।

JAYPEE BROTHERS

आयुर्वेद में जिस गुण में मृदुता, स्निग्धता, बल और रूप की वृद्धि, वायु का शमन, श्लेष्मा व सुख की वृद्धि होती है उसे स्निग्ध गुण कहते हैं। स्निग्ध गुण वाले द्रव्यों में जल महाभूत की अधिकता होती है अतः जो वायु शमन करने वाला श्लेष्मा और शुक्र की वृद्धि करता है उसे स्नेह गुण कहा जाता है। वाग्भट्ट की **''हेमाद्रि''** टीका में लिखा है-जिस गुणयुक्त द्रव्य में शरीर को आर्द्र करने की शक्ति हो उसे स्नेह कहते हैं।

स्नेह की स्थिति जल में ही होती है। यदि यह कहा जाए कि तैल तो पार्थिव है उसमें भी स्नेह देखा जाता है। यह जलीय नहीं है यदि जलीय होता तो अग्नि के प्रतिकूल होता अर्थात् बुझाने वाला होता किन्तु तैल में स्नेह की अधिकता होने के कारण अग्नि को बुझाने की क्षमता नहीं है।

सामान्यतः चूर्ण आदि के पिण्ड रूप होने में कारण रूप गुण को स्नेह कहते हैं। अतः इसे कारणगुण ाप्रकर्षजन्य कहा जाता है तथा वह केवल जल में ही रहता है। सामान्य लोकभाषा में इसे चिकनापन कहते है। यह स्नेह ही अनेक वस्तुओं के फैले हुए कणों को संग्रहित करने वाला है।

२१. संस्कार

संस्कारव्यवहारसाधारणकारणं संस्कारः। (त०भा०)

संस्कारकरणं मतम्। (च०सू० 26/34)

कारणं पुनः स्वाभाविकानां द्रव्याणामभिसंस्कारः। (त०भा०)

सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमानसंस्कारः। (त०सं०)

संस्कारभेदो वेगोऽथ स्थितिस्थापकभावने। (त०सं०)

संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते। (च०वि०)

अर्थात् गुण को प्राप्त करने की क्रिया को संस्कार कहते हैं। औषधि या आहार को बनाने में कई प्रकार की क्रियाएं की जाती हैं। उन क्रियाओं में द्रव्य में दूसरे गुण की उत्पत्ति होती है उसे संस्कार कहते हैं। संस्कार के तीन भेद बताए गए हैं- (1) वेग (2) भावना (3) स्थितिस्थापकत्व।

वेग- यह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि इन चार मूर्त द्रव्यों में तथा मन में प्राप्त होता है। उपरोक्त पांच द्रव्यों में किसी भी कारण विशेष से जो गति पैदा होती है उसे वेग संज्ञक संस्कार कहते हैं।

भावना- अनुभव प्रत्यक्ष आदि होने के पश्चात् उन अनुभवों का जो कुछ भी अंश मन में रहता है उसी के द्वारा उन अनुभूत विषयों का स्मरण होता है। इस प्रकार ये वस्तुएं पुनः पहचानी जाती हैं अतः पूर्व अनुभूत विषयों की प्रत्यभिज्ञा जिस संस्कार से उत्पन्न होती है उसका नाम भावना संस्कार जानना चाहिए। यह संस्कार केवल आत्मा में रहता है।

स्थितिस्थापकता- जिस गुण के कारण द्रव्यों में लचीलापन पाया जाता है उसको स्थितिस्थापक संस्कार कहते हैं। जिस प्रकार रबड़ का टुकड़ा खींचने पर लम्बा व छोड़ने पर अपनी पूर्वावस्था में आ जाता हैं यह पृथ्वी, जल, वायु व अग्नि में पाया जाता है।

JAYPEE BROTHERS

२२. २३ धर्माधर्म

विहितकर्मजन्यो धर्मः निषिद्धकर्मजन्यस्वधर्मः।
पुण्यकर्मजन्यो धर्मः पापकर्मजन्योऽधर्मः॥ (कणाद)

धर्माधर्मौ सुख-दुःखयोरसाधारणकारणे। (त०भा०)

वेदविहित क्रियाओं के आचरण करने से उत्पन्न होने वाले गुण को धर्म कहते हैं। अधर्म में अतिव्याप्ति न हो जाये इसलिए वेदविहित कर्म द्वारा लक्षण बताया गया है। अर्थात् योगादिजन्य कर्म वेदविहित होते हैं। सभी प्रकार के धर्मग्रन्थों में जिन आचरणों के द्वारा सुखप्राप्ति बताई गई है वे सभी कर्म धर्म के अन्तर्गत आते हैं। इनकी पुष्टि प्रत्यक्ष शास्त्र तथा अनुमान द्वारा होती है। दूसरे रूप में पुण्यकर्मजन्य धर्म है। शास्त्रविहित कर्म पुण्य कहलाते हैं। जैसे-यज्ञ, योग, सत्यभाषण आदि। इस पुण्यकर्म से पैदा होने वाला अदृष्ट गुण धर्म कहलाता है और इसी गुण द्वारा स्वर्गप्राप्ति सुख भी मिलता है।

शास्त्रों द्वारा निषिद्ध आचरण के करने से अधर्म की उत्पत्ति होती है। यदि ऐसा वेदनिषिद्ध लक्षण नहीं किया जायेगा तो धर्म में अतिव्याप्ति हो जायेगी। अधर्म का नाश प्रायश्चित्त करने से तथा कर्मों के भोगने से होता है। शास्त्रनिषिद्ध कर्मो के पाप, चोरी, हिंसा, अनैतिक कर्म आते हैं, उनसे पैदा होने वाला अदृष्ट गुण अधर्म है। जिससे कालान्तर में नर्क व दुःखों की प्राप्ति होती है।

धर्म व अधर्म आत्मा के गुण बताए गए है।। ये दोनों पुण्य व पाप कर्म के व्यापार स्वरूप है इनका विपाक होने पर दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां उत्पन्न करते हैं। आयुर्वेद में सद्व्रत पालन का उपदेश पुण्य कर्म के अन्तर्गत बताया गया है एवम् अहित आयु व दुःख आयु पाप कर्म के ही परिणाम है।

२४. शब्द

श्रोत्रमात्रग्राह्यो गुणः शब्दः। आकाशमात्रवृत्तिः॥ (कणाद्)

शब्दो ध्वनिश्च वर्णश्च मृदङ्गादिभवो ध्वनिः।
कण्ठसंयोगादिजन्या वर्णास्ते कादयो मताः॥

सर्वः शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते।
वीचितरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता॥ (कारिकावली)

शब्दोऽम्बरगुणः श्रोत्रग्राह्यः क्षणिकः। (प्रशस्तपाद)

जिस गुण का श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण होता है उसे शब्द कहते हैं।

शब्द आकाश का गुण, श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण होने वाला तथा क्षणिक है।

उपरोक्त लक्षणों से ज्ञात होता है कि कर्ण इन्द्रियों से ग्रहण होने वाले विषयों को शब्द कहते हैं। वह क्षणिक, कार्य कारण का विरोधी, संयोग विभाग तथा शब्द से उत्पन्न होने वाला होता है।

शब्द के भेद

शब्द दो प्रकार का होता है- (1) ध्वन्यात्मक, (2) वर्णात्मक।

1. **ध्वन्यात्मक**- भेरी, मृदङ्ग आदि से उत्पन्न होने वाली ध्वनि से ध्वन्यात्मक शब्द कहे जाते हैं।

JAYPEE BROTHERS

2. **वर्णात्मक**- कण्ठ के संयोग से ककारादि स्वरूप शब्द वर्णात्मक कहे जाते है। अथवा संस्कृत या अन्य भाषाओं में उत्पन्न होने वाले शब्दों का वर्णात्मक कहा जाता है।

वर्णात्मक शब्दों को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है सार्थक, निरर्थक।

सार्थक शब्द

राम, मोहन, गाय, द्रव्य आदि संज्ञा रूप में तथा गच्छति, हसति, पठति आदि क्रिया रूप में, सार्थक शब्दों का ज्ञान होता है।

निरर्थक शब्द

जिन शब्दों का विशेष अर्थ ज्ञान प्राप्त न हो वे निरर्थक शब्द कहलाते हैं। जैसे-पानी-वानी, साग-वाग आदि में वानी एवं वाग का कोई अर्थ नहीं है।

सार्थक शब्द को पुनः दो भागों में विभक्त करते हुए मिथ्या और यथार्थ नाम दिये हैं। यथार्थ शब्दों के द्वारा सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है और मिथ्या शब्द असत्य, अप्रामाणिक व आडम्बरयुक्त होते हैं।

शब्दोत्पत्ति प्रकार

शब्द उत्पत्ति में संयोग विभाग तथा शब्द को कारण माना गया है इनमें संयोग तथा विभाग से उत्पन्न होने वाले शब्द **वीचितरंग न्याय** द्वारा श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण किये जाते हैं। शब्द और श्रोत्र के पृथक्-पृथक् स्थानों पर होने के कारण वीचितरंग न्याय द्वारा शब्द की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पानी में पत्थर फैंकने से एक तरंग से दूसरी, फिर तीसरी, चौथी इस प्रकार आगे से आगे उत्पन्न होकर चलती रहती है उसी प्रकार शब्द की तरंगे भी आकाश में चलती हुई ज्ञानेन्द्रिय तक पहुंच जाती है।

कुछ लोगों के अनुसार दूसरा मत **''कदम्बगोलक न्याय''** है क्योंकि वीचितरंग न्याय में लहरों का उत्पत्तिक्रम एक के बाद एक होता है किन्तु कदम्बगोलक न्याय शब्द में उत्पन्न होते ही कदम्ब वृक्ष के फूल की पंखुड़ियों के समानरूप से एक स्थान से उत्पन्न होकर तुरन्त ही दशों दिशाओं में उत्पन्न होते हैं।

आयुर्वेद में गुर्वादि गुणों का विशेष महत्व देखा जाता है अतः उनका द्वन्द्व रूप में आगे वर्णन किया जा रहा है। यही शब्दोत्पत्ति एवं प्रसार का क्रम है।

द्वन्द्व गुण-(गुर्वादिगुण)

(कर्म में असान्य गुण)

इस अध्याय में दार्शनिक 14 गुणों का विशेष रूप से विवरण देते हुए आयुर्वेदीय 41 गुणों का भी यथासम्भव परिचय दिया गया है। परादि गुणों का दार्शनिक गुणों में विशेष रूप से उल्लेख होने के कारण उनके वर्णन में आयुर्वेदीय पक्ष को भी यथावश्यक बता दिया गया है। किन्तु गुर्वादि गुण सर्वाधिक महत्वपूर्ण होने से इनका आयुर्वेदीय विवेचन भी प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। वाग्भट्ट ने इन गुर्वादिक गुणों को द्वन्द्व रूप में प्रस्तुत किया है।

गुरु, मंद, हिम, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदुस्थिराः।
गुणाः ससूक्ष्म-विशदा विंशतिः सविपर्ययाः॥

JAYPEE BROTHERS

चरक ने भी इन 20 गुणों का वर्णन किया है-गुरु-लघु, शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, मंद-तीक्ष्ण, स्थिर-सर, मृदु-कठिन, विशद-पिच्छिल, श्लक्ष्ण-खर, सूक्ष्म-स्थूल और सान्द्र-द्रव।

इस प्रकार अष्टांग संग्रह के प्रथम 10 गुणों में कोई अन्तर नहीं है परन्तु इसकी इन्दु टीका में श्लक्ष्ण के विपरीत परुष लिखा है जबकि चरक ने खर लिखा है। स्थिर के विपरीत इन्दु टीका में चल और चरक में सर लिखा है, श्लक्ष्ण के विपरीत परुष और खर। इनमें शब्द भेद के अलावा अर्थभेद नहीं है।

द्वन्द्व का अर्थ दो का जोड़ा होता है। जैसे-रात-दिन, माता-पिता आदि। इसी प्रकार गुणों में भी 20 गुण युग्म के रूप में होते हैं। यह युग्म समान धर्म या विरुद्ध धर्म दोनों के रूप में ही होता है। यहां 10 युग्मों में दोनों गुण एक दूसरे के विपरीत धर्म वाले हैं। इसमें किसी जोड़े के गुण विशेष के बढ़ जाने पर उसके विपरीत गुण का प्रयोग कराए जाने पर प्रथम गुण शान्त हो जाता है। इसलिए उपरोक्त इन 20 गुणों को द्वन्द्व गुण इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनमें 10 गुण दूसरे 10 गुणों के परस्पर विपरीत कर्म करने वाले होते हैं। चिकित्सा में सामान्य विशेष सिद्धान्त को इन्हीं गुणों के आधार पर प्रयोग में लाया जाता है।

गुरु-लघु

जिस गुण के कारण शरीर की पुष्टि हो, कफ, मलों तथा बल की वृद्धि और वात क्षय हो, तृप्ति का अनुभव हो, द्रव्य देर में हजम हों, शरीर भारी हों, द्रव्यों में विद्यमान वह गुण गुरु कहलाता है।

गुरु वातहरं पुष्टिश्लेष्मकृत् चिरपाकी च। (भाव० प्र०)

गुरु गुण के विपरीत जिस द्रव्य के कारण शरीर पतला हो, मलों तथा कफ की कमी हो अंगों में हल्कापन का अनुभव हो, द्रव्य शीघ्र हजम हो जाये एवं व्रणादि का रोपण हो, द्रव्यों में स्थित उस गुण को लघु कहते हैं। ये उत्तम पथ्य होते हैं।

लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकी च। (भाव०प्र०)

शीत-उष्ण

जिस गुण के कारण द्रव्य का स्पर्श और सेवन विशेषतः उष्णता से पीड़ित पुरुष को आह्लाद देने वाला हो, जो स्तम्भक हो, अर्थात् वमन, अतिसार, बहते हुए रक्तादि को रोके एवं शरीर में संचार करने वाले द्रव पदार्थों की गति को मन्द करे, जो मूर्च्छा, पिपासा, स्वेद और दाह की शान्ति करे, द्रव्य में स्थित उस गुण को शीत कहते हैं। इसे लोकभाषा में ठण्डा या सर्दी करने वाला कहा गया है।

ह्लादनः स्तम्भनः शीतलो मूर्च्छातृट्स्वेददाहजित्। (सु०सू०)

शीत गुण के विपरीत जिस गुण के द्वारा कष्टप्रद, स्वेद, मूर्च्छा, तृष्णा और दाह का उत्पादक, वमनादि को उत्पन्न करने या बढ़ाने वाला विशेष करके पाचन अर्थात् खाये हुए अन्न पान को रस रूप में एवं रस को रक्तादि रूप में पचाने की क्रिया को बढ़ाने वाला तथा व्रणों को पकाने वाला हो उसे उष्ण कहते हैं। इसे लोकभाषा में गर्म कहा जाता है।

उष्णस्तद्विपरीतः स्यात् पाचनश्च विशेषतः। (सु०सू०)

स्निग्ध-रूक्ष

स्निग्ध गुण वह गुण कहलाता है जिसके कारण द्रव्य शरीर में स्निग्धता, मृदुता, बल और कान्ति की वृद्धि करे, वृष्यता लाये, वात की शान्ति और कफ की पुष्टि करें। स्निग्ध द्रव्यों में जल महाभूत की एवं स्नेहों की अधिकता रहती है।

JAYPEE BROTHERS

स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम्। (भा०प्र०)

स्निग्ध के विपरीत रूक्ष गुण कहलाता है अर्थात् वह गुण जिससे शरीर में रूक्षता, कठिनता आदि उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त वातकारी एवं कफहर होते हैं। रूक्ष द्रव्यों में सेल्युलोज की अधिकता तथा पृथ्वी व वायु भूत प्रधान होते हैं।

रूक्षस्तद्विपरीतः स्यात् विशेषात् स्तम्भनः खरः। (सु०सू०)

स्थिर-सर

स्थिर वह गुण कहलाता है जिसके कारण आहार, औषध-द्रव्य, वात और मल का स्तम्भन करें अर्थात् उनको अधोमार्ग से निकलने से रोके उसे स्थिर कहते हैं। यह पृथ्वी का विशेष गुण है।

सर-स्थिर के विपरीत गुण है अर्थात् जिसके कारण द्रव्य वात और मल की प्रवृत्ति (अधोमार्ग से गमन) कराये उसे सर कहते हैं। यह बन्धन को ढीला कर मलों को बाहर निकालते हैं।

सराऽनुलोमनः प्रोक्तः। (भाव०प्र०)

मन्द-तीक्ष्ण

जिस गुण के कारण द्रव्य अपनी सभी क्रियायें, अल्पता, शिथिलता आदि अधिक समय में करता है उसे मन्द कहते हैं।

यस्य शमने शक्तिः स मन्दः। (भा०प्र)

इसके विपरीत जिस गुण के द्वारा द्रव्य शरीर में फैल जाए एवं अपनी क्रिया शीघ्र करे उस गुण को तीक्ष्ण कहते हैं। यह दाह पाक व स्राव करने वाला है।

दाहपाककरस्तीक्ष्णः स्रावणः। (सु०सू०)

मृदु-कठिन

यस्य द्रवस्य श्लथने कर्मणि शक्तिः स मृदुः दृढ़ने कठिनः।

जिस गुण के कारण द्रव्य शरीर के एक अंग या सभी अंगों को (बाह्य या आभ्यन्तर प्रयोग द्वारा) शिथिल करे उसे मृदु कहा जाता है। जो दृढ़ करे उसे कठिन कहते हैं। इस गुण में पृथ्वी के गुणों की अधिकता होती है।

पिच्छिल-विशद

पिच्छलस्तन्तुलो बल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः। (भा०प्र)

जिस गुण के कारण द्रव्य प्राणों को धारण करने वाला, बल्य, भग्न अस्थि को छोड़ने वाला, कफवर्धक, गुरु और तन्तुमान् हो उसे पिच्छिल कहते हैं। पिच्छिल द्रव्यों की विशेषता यह है कि ये त्वचा पर एवं श्लेष्मकला पर लेप सा कर लेते हैं।

पिच्छिल गुण के विपरीत विशद गुण वह होता है जिसके कारण द्रव्य क्लेद (त्वचा, व्रण, शरीर अवयव आदि में स्थित द्रवांश) का शोषण तथा व्रण का रोपण करें। इसमें पृथ्वी तथा वायु गुणों की अधिकता होती है।

विशदो विपरीतोऽस्मात् क्लेदाचूषणरोपणः। (सु०सू)

JAYPEE BROTHERS

श्लक्ष्ण-खर

श्लक्ष्ण गुण पिच्छिल के समान ही कर्म करने वाला है। अन्तर केवल इतना है कि पिच्छिल द्रव्य स्निग्ध एवं श्लक्ष्ण, स्नेहरहित और कठिन होता हुआ भी चिकना होता है। श्लक्ष्ण द्रव्य रोपण करने वाले होते हैं।

खर श्लक्ष्ण के विपरीत होता है तथा विशद से मिलता हुआ है तथा जो अपने खरत्व गुण के कारण व्रण आदि के उभरे हुए भाग के लेखन (छीलने) का कार्य करता है।

श्लक्ष्णः पिच्छिलवज्ज्ञेयः कर्कशो विशदो यथा। (सु०सू०)

सूक्ष्म-स्थूल

इसे लोकभाषा में बारीक कहा जाता है अर्थात् वह गुण जो सूक्ष्म स्रोतों में भी प्रविष्ट हो जाता है।

देहस्य सूक्ष्मछिद्रेषु विशेद्यत् सूक्ष्ममुच्यते। (भावप्रकाश)

सान्द्र-द्रव

यस्य प्रसादने शक्तिः स सान्द्रः। (भावप्रकाश)

जिस गुण के कारण कोई द्रव्य अवयवों में शुष्कता अर्थात् आर्द्रता को दूर करके अवयवों की पृथक्ता उत्पन्न करे उसे शुष्क या सान्द्र गुण कहते हैं।

सान्द्र गुण के विपरीत गुण द्रव होता है अर्थात् जिन द्रव्यों में शरीर में आर्द्रता उत्पन्न हो और सर्वत्र प्राप्त होने की प्रवृत्ति रखे उसे द्रव कहते हैं।

द्रवः प्रक्लेदनः।

द्रव्यों में उपलभ्यमान गुण

संहिताकारों का मानना है कि गुण में गुण एवं कर्म नहीं रहते अतः जहां गुण के गुण कर्मों का वर्णन किया गया हो वहां उसके आश्रयभूत द्रव्य का ही गुण समझना चाहिए।

गुणा गुणाश्रया नोक्तास्तस्माद्रसगुणान् भिषक्।
विद्यात् द्रव्यगुणान् कर्तुरभिप्रायाः पृथिग्विधाः॥ (च०सू० 26/36)

कणाद का भी मत है कि गुण द्रव्य के आश्रयी है। इसी सन्दर्भ में सुश्रुत सू० में 40 में **तेऽपि द्रव्याश्रया स्मृताः। रसेषु न भवन्त्येते निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः।** अतः गुण को द्रव्य के अधीन ही माना जाता हैं विशिष्ट गुणों के कारण ही द्रव्य में विशिष्ट शक्ति रहती है अतः गुण द्रव्य के स्वरूप तथा उसकी शक्ति को प्रकट करने वाले हैं अतः गुण दो प्रकार के हैं- (1) यावद्द्रव्यभावी (2) आवस्थिक।

1. **यावद्द्रव्यभावी**- प्रथम प्रकार के वे गुण हैं जो द्रव्य में निरन्तर उपलभ्यमान होते हैं। जैसे अग्नि में उष्णता, वायु में चलत्व, तेल में स्नेहत्व। इस प्रकार के गुणों को यावद्द्रव्यभावी गुण कहा जाता है। इनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
2. **आवस्थिक**- जो द्रव्य की अवस्था के अनुरूप रहते हैं उन्हें आवस्थिक गुण कहा जाता है। जैसे नये धान में गुरुत्व गुण होता है जो पुराण अवस्था मे हीन हो जाता है। आवस्थिक गुण द्रव्य की अवस्था पर निर्भर करते हैं। एक गुण अवस्था परिवर्तन से नष्ट हो जाता है तथा उसके स्थान पर नवीन गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इसे गुणान्तराधान कहते हैं। च०वि० में लिखा है-**संस्कारो हि**

JAYPEE BROTHERS

गुणान्तराधानमुच्यते। प्रथम यवद्द्रव्यभावी गुणों में परिवर्णन का होना सम्भव नहीं है किन्तु दूसरे आवस्थिक गुणों में गुणान्तराधान से परिवर्तन सम्भव है। जैसे चावल से लाजा (खील) बनाने पर गुणान्तर स्पष्ट हो जाता है। यहां पर द्रव्य में भी परिवर्तन हुआ है अतः द्रव्य का परिवर्तन कालिक या अवस्था विशेष में होने पर गुणों में भी परिवर्तन हो जाता है। वृ० आरण्यक उपनिषद् के शांयण भाष्य में भी इसका वर्णन किया गया है।

अतः द्रव्य निरपेक्ष गुणों का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। द्रव्य में होने वाले परितर्वन के द्वारा ही गुणों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। रस शास्त्र में भी शोधन, मारण, मूर्च्छन आदि संस्कारों से गुणात्मक परिवर्तन देखने को मिलता है।

अतः यावद्द्रव्यभावी गुण द्रव्यों में सर्वदा उपलभ्यमान रहते हैं किन्तु द्रव्य की अवस्था परिवर्तन पर गुण भी परिवर्तित हो जाते हैं। वैसे सभी गुण द्रव्यों में भी उपलभ्यमान हैं। पृथक् इनकी प्राप्ति नहीं हो सकती है।

गुण की प्रधानता का निरूपण

गुण की प्रधानता का निरूपण एकीयमत से रस वैशेषिककार नागार्जुन ने किया है–

गुणाः प्रधाना इति केचित्–गुणाद् रसानामभिभवात्, विपाककारणत्वात्, बाहुल्यात्, बहुधोपयोगात्, अनेककर्मत्वात्, महाविषयत्वात्, गुणानुगृहीतानां रसानां प्राधान्यात्, उपदेशापदेशादनुमानात्।

इनको संक्षेप में इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है–रसपराभव, विपाककारणत्व, बाहुल्यात् (संख्याधिक्यता), बहुधोपयोगात् (प्रयोग भेद से), अनेककर्मत्वात् (अनेकविध कर्म भेद से) महाविषयत्वात् (विषय भेद से), रसानुग्रहात्, उपदेश, अपदेश तथा अनुमान आदि युक्तियों से गुणों को प्रधान बताया है। (विशेष वर्णन लेखक के द्रव्यगुण विज्ञान में पढ़े)

१. **रसपराभवः**– गुण रसों को दबाकर अपना कार्य प्रकट करते हैं जैसे गर्म जल मधुर रस का पराभव करके कफ को कम करता है। जबकि शीतल जल कफवर्धक है। इसी प्रकार पटोलपत्र, वृहत् पंचमूल उष्ण होने से तिक्त रस को दबाकर वातहर है अतः पराभव करने वाला प्रधान और प्रभावित होने वाला अप्रधान है।

२. **विपाककारणत्वः**– विपाक भी गुणों पर आधारित है। शीत, स्निग्ध, गुरु और पिच्छिल गुण गुरु विपाकी हैं तथा लघु, रूक्ष, विशद, तीक्ष्ण आदि गुण लघु विपाकी हैं। इस प्रकार रसों की कार्यनिष्पत्ति विपाकाधीन होने से तथा विपाक गुण के अधीन होने से परम्परानुसार गुणों की प्रधानता है।

३. **संख्याधिक्यता :**– रसों की संख्या 6 होती हैं तथा गुणों की संख्या 20 होती है। इनमें भी कर्मण्य गुण 10 होते हैं अतः कम संख्या वाले अप्रधान तथा अधिक संख्या वाले प्रधान होते हैं।

४. **प्रयोग भेद से :**– गुणों का अधिक उपयोग होने से तथा अनेक प्रकार के प्रयोग होने से भी प्रधान है। जैसे अभ्यंग, परिषेक, अवगाह आदि रूप में गुणों का उपयोग होता है। रसों का उपयोग केवल मुख द्वारा होता है अतः जिसका अनेक प्रकार से प्रयोग होता है वह प्रधान कहा जाता है।

५. **कर्म भेद से :**– गुण रसादि के साथ रहकर अनेक कर्म कराने में सहायक होते हैं इसलिए गुणों के अनेकविध कर्म दिखाई देते हैं। अतः गुण प्रधान है।

६. **विषय भेद से :**– गुणों के विषय अर्थात् द्रव्य अनेक होने से भी गुण प्रधान है। जैसे अन्य इन्द्रिय की अपेक्षा विषय अनेक होने से मन को प्रधान कहा हैं। उसी प्रकार अधिक विषय वाला गुण भी प्रधान है।

JAYPEE BROTHERS

७. **रसानुग्रहात् (उत्कर्षता)** :- गुण से अनुग्रहीत रसों की प्रधानता देखी जाती है। गुणों के कारण रसों में उत्कर्ष आ जाते हैं अतः प्रधानता गुणों की ही होती हैं। जैसे घृत के गुण, शैत्य, स्नेह, मार्दव, पिच्छिल होने से तथा विपाक लघु होने से मधुर रस वाले द्रव्यों में घृत उत्कृष्ट माना जाता है। अम्ल द्रव्यों में आंवला अपने मृदु, शीत और लघु विपाक के कारण श्रेष्ठ माना जाता है अतः अनुग्रह करने वाला प्रधान तथा अनुग्रहीत होने वाला अप्रधान होता है। इसीलिए गुण प्रधान है।

८. **उपदेश** :- आचार्यों ने संहिता ग्रन्थों में गुणों का ही उपदेश किया है। जैसे गुरु, उष्ण, स्निग्ध वातहर हैं अतः इन गुणों वाले द्रव्य वातघ्न कहे जाते हैं अतः आप्तोपदेश से भी गुण प्रधान है।

९. **अपदेश** :- गुण से ही विषयों पर परिचयादि किया जाता है। जैसे वह पुरुष रूक्ष स्वभाव वाला है, यह गीत मधुर है, उड़द गुरु है, मूंग लघु है। इस प्रकार व्यवहार में भी गुणों की प्रधानता बताई गई है।

१०. **अनुमान** :- शीत या उष्णादि गुण देखकर ही द्रव्यों का अनुमान किया जाता है। जैसे शीत होने से पित्तहर है। यह उष्ण होने से वातहर है। इस कारण व्यवहारानुमान से भी गुण की प्रधानता सिद्ध होती है।

गुणों का आयुर्वेद में चिकित्सकीय महत्व

आयुर्वेद में बताये गये 41 गुणों को चार रूपों में विभाजन किया है-

आध्यात्मिक गुण :- इनका उपयोग मन, आत्मा, बुद्धि एवं मन के विषय के रूप में उपयोग देखा जाता है। चूंकि आयुर्वेद का मूल उद्देश्य स्वस्थ शरीर बनाये रखते हुए सर्वथा वेदना की निवृत्ति हो जाने पर मोक्ष प्राप्ति कराना है। अतः मन एवं आत्मा तथा बुद्धि को नियन्त्रण में करने के लिए इन गुणों का ज्ञान होना आवश्यक है ये गुण इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न एवं बुद्धि आदि हैं।

गुर्वादि गुण :- इन्हें शारीरिक गुण कहा जाता है ये संख्या में 20 होते हैं। शरीर के दोष, धातु एवं मलों की प्रवृत्तियां इन्हीं गुणों के द्वारा बताई जाती है। कारण एवं कार्य जितने भी द्रव्य बताये गये हैं उनकी प्रवृत्ति कार्य एवं लक्षण भी इन्हीं गुणों के द्वारा प्रकट किये जा सकते हैं। चरक ने आहार के जो भेद बताये हैं उनमें गुणों की दृष्टि से भी भेद आहार के बताये हैं। यह उनकी पाक क्रिया धातु एवं दोषों पर प्रभाव की दृष्टि से किया है।

यह भी देखा जाता है कि गुण स्वतः निर्गुण एवं निष्क्रिय होते हैं। इसलिए किसी गुण का कर्म उसके आश्रय भूत द्रव्य का ही कर्म होता है। यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि गुण किसी भी कर्म की उत्पत्ति में कारण अवश्य होते हैं। शास्त्र में इसी कारण गौरव, लाघव आदि गुणात्मक संज्ञाओं का प्रयोग नहीं किया गया है अपितु गुरु, लघु आदि विशेषण शब्दों का बोध कराते हैं। ये शारीरिक धातुओं में जाकर अपने समान गुणान्तर की उत्पत्ति करते हैं तथा इस क्रम में कर्म को भी प्रेरणा देते हैं, क्योंकि संयोग एवं विभाग का होना कर्म के बिना सम्भव नहीं है। अतः इन गुणों का धातु निर्माण, पोषण एवं प्रज्ञापराध से अधिक प्रयोग करने का विकार का कारण भी बनाते हैं। अतः इनका ज्ञान शरीर, रोग, विकार एवं प्रवृति के लिए करना आवश्यक है।

भौतिक गुण :- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच भौतिक गुण आयुर्वेद में अनेक प्रकरणों में व्यावहारिक है। सामान्य व्यक्ति, रूग्ण व्यक्ति, सामान्य इन्द्रिय, विकृत इन्द्रिय, वस्तु के ज्ञान में रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा कहीं कहीं शब्द के द्वारा भी पहचान में प्रयोग किये जाते है।

JAYPEE BROTHERS

परादि गुण– ये दश गुण प्रायः व्यवहार में प्रयोग किये जाते हैं–ये पर, अपर, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथकत्व, परिमाण संस्कार एवं अभ्यास हैं।

रोगी परीक्षा, औषध द्रव्य परीक्षा, द्रव्यों की गणना, द्रव्यों का मेल, द्रव्यों को पृथक् करना, विभाजित करना, उनका मान (तौल) एवं विशेष द्रव्यों की भावना, मूर्च्छन, प्रक्रिया, पारद शोधन आदि संस्कार का प्रयोग किया जाता है। युक्ति का रोग पहचान एवं औषध निर्माण तथा सूत्र समझने में प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार समस्त गुणों का आयुर्वेद में अनेक स्थानों पर प्रयोग होने से इनकी व्यावहारिकता सिद्ध होती है।

आयुर्वेद को समझने में जिन–जिन आधारभूत तत्वों का ज्ञान करना चाहिए उनमें गुण के ज्ञान की भी बहुत महत्ता है जितनी कर्म एवं द्रव्य की होती है।

कारण पदार्थों में गुणों का प्राधान्य

द्रव्य, कर्म, सामान्य विशेष एवं समवाय का महत्व उनके गुणों के आधार पर ही होता है।

1. द्रव्य की कार्मुकता गुणों के आधार पर देखी जाती है।
2. कोई द्रव्य गुणों के आधार कर सामान्य या विशेष कर्म करने में समर्थ होती है।
3. सामान्य का भी एक भेद गुण सामान्य के रूप में किया गया है।
4. विशेष का महत्व भी गुण विशेष के आधार पर बताया है।
5. समवाय नित्य सम्बन्ध है यह भी गुण एवं गुणी के सम्बन्ध को प्रकट करता है।

अतः द्रव्य, कर्म, सामान्य विशेष एवं समवाय का स्वरूप गुणों के आधार पर प्रकट होने से इन सभी में गुण को प्रधान कहा गया है।

समकालीन साहित्य में गुणों का उपयोग

गुणों का उपयोग प्रायः दर्शन ग्रन्थों एवं सभी आयुर्वेद ग्रन्थों ने किया है। इसी कारण गुणों की संख्या भिन्नता मिलती है। कारिकावली, सांख्य कारिका, सांख्य तत्व कौमुदी एवं न्याय सिद्धान्त मुक्तावली में गुणों के भेद एवं गुण का स्वरूप उपयोगिता की दृष्टि से बताया है।

जहां चक्रपाणि ने वैशेषिक, सामान्य एवं आत्म गुणों का वर्णन किया है वही कारिकावली में मूर्त एवं अमूर्तगुण, उभयवृत्ति एवं एक वृत्ति गुण, अनेकाश्रित गुणों के रूप में भेद किये है वाग्भट ने त्रिविध महागुणों का वर्णन किया है वैशेषिक ने 24 गुण, महर्षि कणाद ने 17 गुणों का उल्लेख किया है, शंकर मिश्र ने सर्वाधिक सात विशेष गुण बताये है, नव्य न्याय में 21 गुण इस प्रकार व्यवहारिक एवं धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से गुणों को उपयोगिता का दृष्टि से वर्णन किया है। अपने अपने प्रधान उद्देश्य की पूर्ति के लिए समकालीन आयुर्वेद एवं संस्कृत सांहित्य में ही नहीं आधुनिक दार्शनिकों प्लूटो, फाण्ट एवं रासायनिक एवं भौतिक वैज्ञानिकों ने भी गुणों के आधार पर अपने सिद्धान्त सिद्ध किये है।

JAYPEE BROTHERS

JAYPEE BROTHERS

or detailed information on ayurveda books, visit our website **www.jaypeebrothers.com,** for detailed information on ayurve

आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान

प्रस्तुत पुस्तक में 'पदार्थ विज्ञान' के नवीन पाठ्य विषयों को समाहित कर विद्यार्थियों के लिए अध्ययन का मार्ग सरल करने का प्रयास किया गया है।

- पाठ्यक्रम के सभी विषय।
- सभी विषय यथावश्यक है।
- नवीन पाठ्यक्रमानुसार सभी बिन्दुओं को यथास्थान दिया है।

आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा एम.डी. आयुर्वेद, स्व. पं. रामदत्त जी शर्मा के सुपुत्र, मूल निवासी बिसाऊ, झुन्झुनू (राजस्थान) ने अपना आयुर्वेद अध्ययन वैद्य मुरारी मिश्र जी एवं वैद्य रामकृष्ण शर्मा जी दण्ड के सानिध्य में कर्माभ्यास करते हुए आयुर्वेदाचार्य उपाधि प्राप्त की, १९६८ से १९७८ तक जयपुर एवं हरियाणा के विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन कराते हुए पदार्थ विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान, आयुर्वेद का इतिहास एवं द्रव्यगुण विज्ञान आदि विषयों पर पुस्तकों का लेखन किया। १९८० में पंजाब विश्वविद्यालय पटियाला से एम.डी. आयुर्वेद की उपाधि प्राप्त कर दिल्ली के मूलचन्द हॉस्पिटल में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी के पद पर पं. हरिदत्त जी शास्त्री एवं श्री मुकुन्दीलाल जी द्विवेदी के सानिध्य में आयुर्वेद विश्वकोश तैयार किया जिसका एक भाग "पन्चकर्म चिकित्सा विज्ञान" चौखम्बा से प्रकाशित हो चुका है। १९९५ में वैद्य शिवकुमार जी मिश्र, पूर्व सलाहकार आयुर्वेद, भारत सरकार के निर्देशन में संकलन कार्य पूर्ण कर मूलचन्द से निवृत्ति लेकर १९९५ से मॉडल आई. हॉस्पिटल, लाजपतनगर में अधीक्षक आयुर्वेद विभाग के पद पर कार्य कर रहे हैं। साथ ही स्वतंत्र चिकित्सा भी कर रहे हैं।

आपके लेख लगभग २०० पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं तथा अनेक सेमीनारों में शोधपत्र वाचन भी किये हैं। आप दिल्ली के जाने-माने सिद्धहस्त नाड़ी चिकित्सक हैं। आपकी ३५ पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। आपने केन्द्रीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान संस्थान की पाँच पुस्तकों : वैद्य मनोरमा, अभिनव चिन्तामणि, बृहत योग तरंगिणी, रसमुन्जूषा, वैद्यक संग्रह का हिन्दी अनुवाद किया है। विगत ४० वर्षों से आप आयुर्वेद छात्रों में लेखक के रूप में प्रसिद्ध व्यक्तित्व के धनी हैं। आपको अनेक संस्थानों ने अनेक मानद उपाधियाँ : शताब्दी महर्षि, राजस्थान श्री, आयुर्वेद विश्व गौरव, आयुर्वेद महाप्रयाण प्रदान की है। वर्तमान में आप राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली के राष्ट्रीय गुरु एवं महासम्मेलन के मंत्री है। आप दिल्ली के जाने-माने नाड़ी चिकित्सक हैं। राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा आपको लाईफ टाईम अचीवमेंट अवार्ड दिया गया है। अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान, सरिता विहार, दिल्ली द्वारा टीचर्स-डे पर सम्मान-पत्र दिया गया है एवं दिल्ली सरकार द्वारा "**वरिष्ठ नागरिक सम्मान**" से सम्मानित किया गया है।

Printed in India

Available at all medical bookstores
or buy online at www.jaypeebrothers.com



JAYPEE BROTHERS
Medical Publishers (P) Ltd.
EMCA House, 23/23-B, Ansari Road,
Daryaganj, New Delhi - 110 002, INDIA
www.jaypeebrothers.com

Join us on facebook.com/JaypeeMedicalPublishers

Shelving Recommendation
AYURVEDA

ISBN 978-93-5465-974-4

9 789354 659744